प्रस्तावना

जीवन-चरित्र

'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवर-गीत' के रचयिता ब्रज-कोकिल नन्ददास के जीवन-चरित्र से अभी तक हिन्दी-संसार एक प्रकार से अपरिचित है। आपका जन्म-सम्वत्, वंश-परिचय, इत्यादि बातों पर अभी तक सम्यक् प्रकाश नहीं डाला जा सका। सच तो यह है कि अन्य भक्त कवियों की भाँति नन्ददास ने भी अपने सम्बन्ध में स्वरचित ग्रन्थों में कुछ भी नहीं लिखा। फिर भी कहीं कहीं आपके सम्बन्ध में उल्लेख अवश्य मिलते हैं। इन्हीं उल्लेखों तथा अब तक प्राप्त सामग्री के आधार पर नन्ददासजी के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखा जायगा।

नाभादासकृत भक्तमाल में 'नन्ददास' के सम्बन्ध में केवल निम्नलिखित छप्पय मिलता है :—

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्तिजुत जुक्ति भक्ति रसगान उजागर।
प्रचुर पयध लौं सुजस "रामपुर" ग्राम निवासी।
सकल सुकुल सम्वलित भक्त पद रेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै मै पगे।
(श्री) नन्ददास आनन्द निधि, रसिक सु प्रमुदित रँगमगे।

श्री ध्रुवदास जी ने 'ध्रुव-सर्वस्व' मे आपके यश का वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा है :—

नन्ददास जो कुछ कह्यो, राग रंग में पागि।
अच्छर सरस-सनेह-युत, सुनत सुमन उठि जागि॥

देख के मोहित हो गये। एक स्थान पर डेरा करके किसी प्रकार रात काटी। सवेरे फिर वहीं पहुँचे, पर उसको न देखा। दिन-भर वहीं अड़े, खड़े रहे। सन्ध्या को उस घर की एक लौंड़ी ने इन्हें बिना अन्न-जल खड़े रहने का कारण पूछा। नन्ददास कहा कि तुम्हारी बहू के दर्शन के लिये मेरी यह दशा है। लौंड़ी ने जाकर उससे कहा और बहुत समझाया, तब वह बारजे में आई और नन्ददास देखकर चले गये। यों ही नित्य जाते और उसे देख कर लौट आते। होते-होते यह बात सारे नगर में प्रसिद्ध होगई। उस स्त्री के घरवालों ने बहुत-कुछ रोका-टोका; पर नन्ददास ने एक न माना और कहा कि बहुत दुख दोगे, तो मैं प्राण दे दूंगा, तुम्हें ब्रह्महत्या लगेगी। हारकर उन लोगों ने निश्चय किया कि अब इस स्थान को छोड़ श्रीगोकुल में चल रहना ही ठीक है, सो गाड़ी कर बेटा-बहू और लौंड़ी तथा दो नौकर ले रातोंरात वे लोग चुपचाप नगर छोड़कर चल दिये। सवेरे नन्ददास ने आकर घर में ताला बन्द देखा, तब पता लगा। ये भी गोकुल की ओर चल पड़े और रास्ते ही में उन लोगों से जा मिले और उन लोगों के लड़ने-भिड़ने पर भी दूर-दूर पीछे लगे चले। श्रीगोकुल के इस पार पहुँच, वे लोग तो नाव पर पार उतर श्रीगोकुल में गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी के पास चले गये। नन्ददास जी इसी पार बैठे रहे और श्रीयमुना जी की स्तुति करते रहे ('नेहकारन जमुने प्रथम आई' आदि)। श्रीगोसाइं जी ने राग-भोग पीछे इन लोगों के प्रसाद लेने के लिये चार पत्तलें धरवाईं तब इन्होंने विनती की कि हम लोग तो तीन ही जन हैं, चार पत्तल किसकी हैं। श्रीगोसाइं जी ने कहा कि जिस एक वैष्णव को तुम लोग उस पार छोड़ आये हो, यह उसकी पत्तल है। यह सुन वे लोग बड़े लज्जित हुए, तब श्रीगोसाइं जी ने कहा कि तुम लोग घबड़ाओ मत, अब वह तुम्हें न सतावेगा। और

अपने एक सेवक को भेजकर नन्ददास जी को बुलवाया। नन्ददास जी की आँखें श्रीगुसाइँ जी के दर्शन करते ही खुल गईं और चरणों पर गिर विनती की कि महाराज! मैं बड़ा अधम हूँ। सारा जन्म विषयवासना में बिताया। अब आप अपने शरण में रख, मेरा उद्धार कीजिए। श्रीगुसाइँ जी ने श्रीयमुना-स्नान कराके इन्हें इष्ट मंत्र दिया, तब इनके दिव्य चक्षु खुल गये और श्रीगुसाइँ की वन्दना में पद बनाया ('जयति रुक्मिनिनाथ पद्मावति प्राणपति विप्रकुल छिप्र आनन्दकारी' आदि)। फिर महाप्रसाद लेने जो बैठे, तो लीला का जो अनुभव हुआ, तो सारी रात बैठे रह गये। पत्तल से न उठे। सवेरे श्रीगुसाइँ जी ने आकर कहा—'नन्ददास, उठो, दर्शन का समय हुआ।' तब उठे और श्रीगुसाइँ जी की वन्दना की (प्रात समय श्रीवल्लभसुत को उठतहि रसना लीजिए नाम' आदि)। तब से दर्शन का आनन्द लेते और भगवद्गुणानुवाद में लगे रहते। तुलसीदास ने यह समाचार सुन, नन्ददास जी को पत्र लिखा—तब इन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्या करूँ, आपने तो मेरा विवाह श्रीरामचन्द्र जी से कर दिया था, पर बीच में जबरदस्ती श्रीकृष्ण ने आकर लूट लिया। अब तो सर्वस्व उनके अर्पण कर चुका। नन्ददास जी ने समग्र दशम स्कंध भागवत की लीला छन्दोबद्ध भाषा में की थी। उसे देख मथुरा के कथा कहने वाले ब्राह्मणों ने आकर श्रीगुसाइँ जी से विनती की कि इस ग्रन्थ से हम लोगों की जीविका मारी जायगी। तब गुसाइँ जी की आज्ञा से 'रासपंचाध्यायी' मात्र रख कर सब ग्रन्थ श्रीयमुना जी में पधरा दिया। एक दिन तानसेन ने नन्ददास का बनाया 'रासलीला' का पद (देखो देखो री नागर नट निरतत कालिन्दी तट आदि) अकबर के सामने गाया। अकबर ने नन्ददास को बुलाया और पूछा कि आपने इस पद में गाया है कि 'नन्ददास गावै तहाँ निपट निकट।' सो आप कैसे

निपट निकट पहुँचे ? नन्ददास जी ने कहा कि इसका भेद अपनी अमुक लौंडी से पूछो। बादशाह ने महल में जाकर उस लौंडी से पूछा। वह लौंड़ी परम वैष्णवी थी और उसे श्रीनाथ जी के दर्शन होते थे, तथा उससे नन्ददास जी से बड़ा स्नेह था। बादशाह की बात सुनते ही वह मूर्छित होकर गिरी और शरीर छोड़ दिया। इधर नन्ददास जी ने भी शरीर छोड़ दिया। बादशाह यह चरित्र देख सन्न हो गया। श्रीगुसाइँ जी ने जब यह समाचार सुना, तब बड़ी सराहना की।"

गार्सां द तासी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास* में नन्ददास के संबंध में निम्नलिखित विवरण दिया है :—

"गीत-गोविन्द के ढँग पर नन्ददास ने 'पंचाध्यायी' (रास-पंचाध्यायी) की रचना की है। इसमें राधाकृष्ण की प्रेम-लीला की ही प्रधानता है। मदनपाल द्वारा सम्पादित पंचाध्यायी का एक संस्करण बाबूराम के लीथो प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है। इसमें केवल ५४ पृष्ठ हैं।"

सं० १९९० में 'सुकवि-सरोज' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसमें सनाढ्य जाति के साहित्यसेवियों का परिचय और उनकी कविता के उदाहरण दिए गए हैं। इसमें 'रामचरित-मानस' रचयिता गोस्वामी तुलसीदास तथा नन्ददास भाई-भाई एवं सनाढ्य ब्राह्मण माने गए हैं। इसके अनुसार नन्ददास का जन्म संवत् १५९४ के लगभग सोरों जिला एटा के समीपस्थ रामपुर नगर में हुआ था। नन्ददास के पिता रामपुर से हटकर सोरों के योगमार्ग मुहल्ले में रहने लगे। बाद में नन्ददास ने धन-सम्पन्न होकर रामपुर को फिर से प्राप्त किया और उसका

---

*"इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदुई ए इन्दुस्तानी," प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३८७-३८८।

नाम बदल कर श्यामपुर रख दिया। नन्ददास के पुत्र का नाम कृष्णदास था और वह अपने चाचा तुलसीदास को बुलाने राजापुर गया; किन्तु वे आए नहीं।

'भक्तमाल' की रचना संवत् १६४२ के बाद नाभादास जी ने की थी। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के संबंध में अब तक किसी विद्वान् ने कोई आक्षेप नहीं किया है। इसके अतिरिक्त नन्ददास के समकालीन होने के कारण इस ग्रन्थ में दी हुई बातें अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान् हैं। ऊपर 'भक्तमाल' से जो छप्पय उद्धृत किया गया है, उससे नन्ददास की जीवनी-संबंधी निम्नलिखित तीन बातें ज्ञात होती हैं :—(१) नन्ददास रामपुर गाँव के रहनेवाले थे; (२) यह शुक्ल (अथवा सुकुल आस्पद) के थे; और (३) चन्द्रहास इनके बड़े भाई थे; या ये चन्द्रहास के बड़े भाई थे, अथवा ये चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे।

श्री ध्रुवदास जी के दोहों से (जो ऊपर उद्धृत किये जा चुके हैं) केवल इतना ही परिलक्षित होता है कि नन्ददास एक सुकवि थे तथा प्रेम की चर्चा सुनकर पुलकित हो उठते थे।

'मूल गोसाईं-चरित तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, नन्ददास जी को गोस्वामी तुलसीदास का भाई बतलाया गया है। इन्हीं ग्रन्थों की प्रामा-
णिकता के आधार पर सुकवि-सरोजकार तथा
नन्ददास और अन्य कई लेखकों ने नन्ददास को तुलसीदास
तुलसीदास का भाई लिखा है। किन्तु अनुसन्धान से
'मूल गोसाईं-चरित' तथा 'दो सौ बावन वैष्ण-
वों की वार्ता' दोनों क्षेपक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। मूल गोसाईं च-
[illegible] प्रामाणिकता पर विचार करते हुए श्री माताप्रसाद गुप्त

एम० ए० ने अपने 'तुलसी-सन्दर्भ' नामक पुस्तक के २३वें पृष्ठ पर लिखा है:—

"वेणीमाधवदास लिखते हैं कि मीन की सनीचरी के उतरते ही (मीन की सनीचरी का अन्त १६४२ वि० के ज्येष्ठ में हुआ था) काशी में मरी का प्रकोप हुआ। उसे गोसाइँ जी ने भगवान् से विनय करके भगा दिया। मरी के पीछे ही केशवदास गोस्वामी जी के दर्शनार्थ आए और एक ही रात्रि में उन्होंने राम चन्द्रिका ऐसे बड़े काव्यग्रन्थ की रचना कर डाली। इस प्रकार 'मूल गोसाइँ चरित' के अनुसार जान पड़ता है, रामचन्द्रिका की रचना संवत् १६४३ के लगभग हुई है; किन्तु यह नितान्त अशुद्ध है; क्योंकि उक्त ग्रन्थ में ही स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि उसकी रचना सं० १६५२ में कार्तिक सुदी १२ बुधवार को समाप्त हुई, इसे इन्द्रजीतसिंह ने बनवाया था। अतएव 'मूल गोसाइँ-चरित' का उल्लेख इस विषय में अत्यन्त अपूर्ण जान पड़ता है।"

'मूल गोसाइं चरित' की ऐतिहासिकता पर विचार करने का एक और ढंग है। वह है इसके व्याकरण के ढाँचे का अध्ययन। इस प्रकार के अध्ययन से इसके काल निर्णय में अमूल्य सहायता मिलती, किन्तु स्थानाभाव से यहाँ इस बात का प्रयत्न न किया जा सकेगा। मेरा तो इस ग्रन्थ के विषय में यही अनुमान है कि गोस्वामी जी की मृत्यु के बहुत दिनों पश्चात् इसका निर्माण हुआ और उसके कर्त्ता ने तुलसीदास जी के सम्बन्ध में उस समय तक प्रचलित समस्त किम्वदन्तियों का समावेश इसमें अत्यन्त चतुरता के साथ कर दिया है।

इसी प्रकार 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा एम० ए० का एक बहुत ही सारगर्भित लेख 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में अप्रैल १९३२

में प्रकाशित हुआ है। उसका शीर्षक है—"क्या दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता गोकुलनाथ कृत है?" उस लेख में डाक्टर साहब लिखते हैं—"अब मैं एक ऐसा प्रमाण देना चाहता हूँ, जो व्यापक रूप से समस्त ग्रन्थ पर लागू होता है और जिससे स्पष्ट रीति से यह सिद्ध हो जाता है कि ८४ वार्त्ता तथा २५२ वार्त्ता के रचयिता दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे और २५२ वार्त्ता निश्चित रूप से सत्रहवीं शताब्दी के बाद की रचना है। 'ब्रजभाषा का विकास' शीर्षक खोज-ग्रन्थ की सामग्री जमा करते समय मैंने चौरासी तथा दो सौ बावन वार्त्ताओं के व्याकरण के ढाँचों का भी अध्ययन किया था। इस अध्ययन से मुझे यह बात आश्चर्यजनक मालूम हुई कि इन दोनों वार्त्ताओं के व्याकरण के अनेक रूपों में बहुत अन्तर है।"

इसके बाद व्याकरण के रूपों तथा वाक्यों की तुलना करते हुए वर्मा जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दो सौ बावन वार्ता गोकुलनाथ कृत नहीं हो सकती। कदाचित् चौरासी वार्ता के अनुकरण में सत्रहवीं शताब्दी के बाद किसी वैष्णव भक्त ने इसकी रचना की होगी।

वार्ता की प्रामाणिकता पर दूसरे ढँग से विचार करते हुए हिन्दी के विद्वान् आलोचक तथा इतिहास-लेखक पंडित रामचन्द्र शुक्ल भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। आप अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं —

"गोसाईं जी का नन्ददास जी से कोई सम्बन्ध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। अतः उक्त वार्ता की बातों को, जो वास्तव में भक्तों का गौरव प्रचलित करने और वल्लभाचार्य जी की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिए पीछे से लिखी गई है, प्रमाण कोटि में नहीं ले सकते।"

ऊपर वार्ता की प्रामाणिकता के विषय में लिखा जा चुका। अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल साम्प्रदायिक गौरव को स्थापित करने के लिए वार्ता में तुलसीदास से नन्ददास जी के भाई होने का सम्बन्ध जोड़ा गया है; पर वास्तव में नन्ददास जी का तुलसीदास जी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसा जान पड़ता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी की अत्यधिक प्रतिष्ठा-संवृद्धि होते देखकर पीछे से किसी वैष्णव भक्त ने उनका नन्ददास जी के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध जोड़ दिया है।

अस्तु। अब तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर नन्ददास के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गोसाईं विट्ठलनाथ का शिष्यत्व ग्रहण करने के पूर्व आपका जीवन वासनात्मक था। किन्तु इसके बाद तो वे कृष्णप्रेम की ओर इतने आकृष्ट हुए कि उनकी गणना अष्टछाप* में होने लगी। आप 'रामपुर' गाँव के रहने वाले उच्चकुल (अथवा सुकुल आस्पद) के थे, और आपके भ्राता का नाम चन्द्रहास था अथवा आप चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र थे। पुष्टिमार्गीय हो जाने के पश्चात् आप श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए गोवर्धन तथा गोकुल में रहने लगे। श्रीनाथ जी की सेविका रूप-मंजरी

---

*अष्टछाप के अन्तर्गत निम्नलिखित भक्त कवियों के नाम आते हैं:—

(१) श्रीसूरदास, (२) श्रीकृष्णदास, (३) श्रीपरमानन्ददास, (४) श्रीकुंभनदास, (५) श्रीचतुर्भुजदास, (६) श्रीनन्ददास, (७) श्रीगोविन्द स्वामी (८) श्रीछीत स्वामी।

इनमें से प्रथम चार श्रीवल्लभाचार्य के तथा शेष चार श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे।

पंचाध्यायी की रचना कब हुई। किन्तु इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही कवि ने इसकी रचना के संबंध में एक कारण दिया है:—

परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आज्ञा दींनी।
ताही तें यह कथा जथा-मति भाषा कींनी॥

नन्ददास जी का यह मित्र कौन था? यह कहीं 'चन्द्रहास' के बड़े भाई तो नहीं थे? कुछ लोगों का अनुमान है कि विट्ठलनाथ जी की शिष्या 'गंगाबाई' तथा नन्ददास जी में घनिष्ट मैत्री थी और इन्हीं के कहने पर उन्होंने रासपंचाध्यायी की रचना की। केवल अनुमान तथा कल्पना पर ही अवलम्बित होने से इसके संबंध में निश्चितरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रासपंचाध्यायी का कथानक

पंचाध्यायी के प्रथम अध्याय के आरम्भ में संसार-दुःखों से संतप्त प्राणियों के लिए श्रीमद्भागवत को प्रगट करने वाले करुणासागर श्रीशुकदेव जी के नख-शिख का वर्णन है। तत्पश्चात् कवि ने वृन्दावन का एक अत्यन्त आदर्श तथा रमणीक वन के रूप में वर्णन करते हुए विविध आभूषणों से अलंकृत किशोर श्रीकृष्णचन्द्र के सौन्दर्य को अङ्कित किया है। इसके बाद ही शरद्-रजनी तथा चन्द्रोदय का वर्णन नितान्त स्वाभाविक ढंग से किया गया है। इसी समय चराचर को मोहने वाली कृष्ण की मुरली बज उठती है। फलतः सभी ब्रजगोपिकाएँ आकृष्ट होकर रास करने के लिए आ पहुँचती हैं। वहाँ पर कृष्ण का दर्शन करके वे प्रेम में पग जाती हैं। इसी अवसर पर रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण जी गोपियों को स्त्रियों का धर्म तथा कर्तव्य समझाने लगते हैं। बस, इस वज्र-वचन के सुनते ही गोपियों का दुःख-सागर उमड़ पड़ता है। यहाँ पर कवि ने गोपियों की दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण

किया है। वे कभी कृष्ण से अनुनय-विनय करती हैं, कभी उपालम्भ देती हैं और कभी 'अधरामृत' के न मिलने पर 'विरह-पावक' में जल मरने की धमकी देती हैं। अन्त में, 'नवनीत' के समान कृष्ण का कोमल हृदय पिघल उठता है और वे गोपियों की बात मानकर कुंज में विहार करते हैं।

रासक्रीड़ा में कृष्ण को मग्न देखकर तथा अच्छा सुअवसर जानकर ब्रह्मादिक को पराजित करने वाला अनङ्ग आ पहुँचता है; किन्तु कृष्ण तुरन्त ही मदन का मान मर्दन कर देते हैं। ऐसा अद्भुत कार्य करने वाले कृष्ण से मिलकर गोपियों को किंचित् अभिमान आ जाता है। यह देखकर नट-नागर कुछ देर के लिये अन्तर्हित हो जाते हैं। यहीं पंचाध्यायी का प्रथम अध्याय समाप्त होता है।

'रास-पंचाध्यायी' के द्वितीय अध्याय का नाम श्रीमद्भागवतकार ने 'कृष्णान्वेषण' बहुत ही उपयुक्त रक्खा है। यह अध्याय विप्रलम्भ शृङ्गार का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कुंज-कुंज में लता-वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती हुई गोपियों का चित्रण किया गया है। यह वर्णन सरस, हृदय-द्रावक तथा करुणरस से ओत-प्रोत है।

तृतीय अध्याय में कवि ने गोपियों की व्याकुलता का बड़ा ही कलापूर्ण चित्र खींचा है। वे बारम्बार कृष्ण से दर्शन देने के लिये प्रार्थना करती हुई प्रलाप करती हैं। स्थान-स्थान पर गोपियों का व्यंग बहुत ही सुन्दर है।

चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण के पुनः प्रकट होने का वर्णन है। गोपियाँ परम उत्सुकता एवं उमंग के साथ उनसे मिलती हैं और अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। इसका चित्रण स्वाभाविक तथा मनोमोहक है। मुसकाती हुई गोपियाँ श्रीकृष्ण से व्यंग-पूर्वक पूछती हैं कि आप इतना कष्ट क्यों देते हैं? तब

श्रीकृष्णजी अपने को गोपियों का परम ऋणी बतलाते हैं और अपने इस प्रकार के व्यवहार के लिये उनसे क्षमा याचना करते हैं।

पंचाध्यायी के पाँचवें अध्याय में कवि ने कृष्ण की रास-लीला का बड़ा ही मनोरम चित्र खींचा है। वर्णन इतना सजीव है कि रास का दृश्य नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। आगे चल कर यह रासलीला जलक्रीड़ा में परिणत हो जाती है और इसके पश्चात् प्रातःकाल के पूर्व 'ब्राह्म मुहूर्त' में गोपियाँ अपने-अपने घर प्रस्थान करती हैं। अन्त में 'फलस्तुति-वर्णन' के साथ-साथ इस ग्रन्थ की समाप्ति होती है।

नन्ददास-कृत रासपंचाध्यायी के कथानक का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध—अध्याय उन्तीस से लेकर अध्याय तेंतीस तक है। श्रीमद्भागवत के रास-पंचाध्यायी रास-सम्बन्धी ये पाँच अध्याय अत्यन्त के कथानक का प्रसिद्ध हैं। नन्ददास जी की पंचाध्यायी का आधार विषय एवं क्रम भी सर्वथा श्रीमद्भागवत के अनुसार है और कहीं कहीं इसके पद भागवत के श्लोकों से बहुत मिलते हैं। इस विषय पर आगे पूर्णतया विचार किया जायगा।

रास-पंचाध्यायी का दूसरा आधार हरिवंश पुराण माना जाता है; क्योंकि इस पुराण के विष्णु-पर्व में इसी रास का वर्णन है जिसका वर्णन नन्ददास जी ने अपनी पंचाध्यायी में किया है। पुराण में इसका नाम "हल्लीस-क्रीड़न' दिया गया है। इसी साम्य के आधार पर हम रास-पंचाध्यायी को हरिवंश पुराण का ऋणी मान सकते हैं।

पंचाध्यायी का तृतीय आधार जयदेव का 'गीतगोविन्द' कहा जाता है। यद्यपि गीतगोविन्द और रास-पंचाध्यायी के

कथानक में आकाश-पाताल का अन्तर है, तथापि दोनों की प्रवाह-गति, मधुरता और शैली एक ही साँचे में ढली हुई है। नन्ददास जी ने कदाचित् गीतगोविन्द के माधुर्य के वशीभूत होकर ही अपने काव्य की रचना की है। दोनों की मधुरता का ढंग एक ही है।

रास-पंचाध्यायी तथा श्रीमद्भागवत

ऊपर हम रास-पंचाध्यायी के कथानक के आधार पर विचार कर चुके हैं। अब यहाँ इस बात पर विचार करना है कि पंचाध्यायी श्रीमद्भागवत पर कहाँ तक अवलम्बित है। इस बात को निश्चित रूप से कहना अत्यन्त कठिन है कि पंचाध्यायी की रचना में नन्ददास ने 'हरिवंशपुराण' तथा 'गीतगोविन्द' से कितनी सहायता ली है; किन्तु इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं कि इसकी रचना के समय कवि के सम्मुख पुष्टिमार्गियों के मान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के रास कीड़ा सम्बन्धी अध्याय सदैव वर्तमान रहे। इस कथन के प्रमाण-स्वरूप नीचे कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

ताही छिन उड़राज उदित रस रास सहायक।
कुंकुम-मंडित प्रिया-वदन जनु नागर नायक॥

रा० पं० अ० १-५१

तदोडुराजः ककुभःकरैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः।
स चर्पणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः॥

श्री० भा० दश० स्कं० पूर्वा० अ० २९-२

कोउ तरुनी गुन-मै शरीर तिन संग चली झुकि।
मात पिता पति बन्धु रहे झुकि झुकि न रही रुकि॥

रा० पं० अ० १-६८

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥
श्री० भा० दश० स्कं० पूर्वा० अ० २९-८

इहि विधि बन-बन हूँढ़ि पूँछि उनमत की नाईं ।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला मनभाईं ॥
—रा० प०अ०२-२१

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिका ॥
—श्री० भा० दश० स्कं० पूर्वा० अ० ३०-१४

क्वासि क्वासि पिय महाबाहु, यों बदति अकेली ।
महाविरह की धुनि सुनि रोवत खग मृग बेली ॥
—रा० प० अ० २-४५

हा नाथ रमणप्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम् ॥
—श्री० भा० दश० स्कं० पूर्वा० अ० ३०-३९

संतन-भै तैं अभै करन, कर कमल तिहारो ।
का घटि जैहै नाथ तनक सिर छुवत हमारो ॥
—रा० पं० अ० ३-१५

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥
—श्री० भा० दश० स्कं० पूर्वा० अ० ३१-५

तब तिनहीं मे प्रगट भए नंदनंदन पिय यों ।
दृष्टि बंद करि दुरै बहुरि प्रगटै नटवर ज्यों ॥
पीत-बसन-बनमाल धरैं, (लएँ) मञ्जु-मुरली हथ ।
मंद-मंद मुसिकात, निपट मनमथ के मन-मथ ॥
रा० पं० अ० ४-२, ३

तासामाविरभूच्छौरि स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३२-२

इक भजते कौं भजै, एक बिनु भजते भजहीं ।
कहो कृष्ण वे कौन आहि जो दोउन तजहीं ॥

—रा० पं० अ० ४-२२

भजतोऽनुजन्त्येके एक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३२-१६

रतनावलि-मधि नील-मनी अद्भुत झलकै जस ।
सकल-तियन के संग साँवरौ पिय सोभित अस ॥

—रा० पं० अ० ५-९

तत्राविशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा अ० ३३-७

धार जमुनजल धँसे, लसे छवि परहि न बरनी ।
विहरत ज्यौं गजराज, संग लै तरुनी-करनी ॥.

—रा० पं० अ० ५-४९

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।
चचार भृङ्ग प्रमदागणावृतो यथामदच्युद्विरदः करेणुभिः ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-२५

इन ऊपर के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पंचाध्यायी की रचना में नन्ददास ने श्रीमद्भागवत के रास-क्रीड़ा

सम्बन्धी अध्यायों से कहाँ तक सहायता ली है। स्थान-संकोच के कारण बहुत से उद्धरण ऊपर नहीं दिये जा सके, फिर भी यहाँ पर इतने ही उदाहरण पर्याप्त हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पंचाध्यायी श्रीमद्भागवत का रूपान्तर मात्र है ? इसके उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि पंचाध्यायी का तृतीय अध्याय श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के ३१ वें अध्याय पर बहुत कुछ अवलम्बित है; किन्तु शेष अध्यायों की पद रचना में भी यत्र तत्र कवि ने भागवत का यथे [illegible] करण किया है। इतना होने पर भी पंचाध्यायी की मौलिकता अक्षुण्ण है। प्रथम अध्याय में श्रीशुकदेव जी का नखशिख वर्णन, वृन्दावन का दृश्य-चित्रण तथा अनंग-आगमन इत्यादि प्रसंगों से नन्ददास की मौलिकता और प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है।

पंचाध्यायी की मौलिकता

इसी प्रकार पंचाध्यायी के चतुर्थ अध्याय के अन्त में गोपियों के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् अपने को उनका ऋणी बतलाते हैं; किन्तु श्रीमद्भागवत में आप केवल उनकी प्रशंसा करके ही सन्तोष कर लेते हैं। पंचाध्यायी के पंचम अध्याय का फलस्तुतिवर्णन तो इसे सर्वथा एक स्वतंत्र ग्रन्थ सिद्ध कर देता है। श्रीमद्भागवत में यह अंश नहीं है। वहाँ तो राजा परीक्षित श्री शुकदेव जी से यह प्रश्न करते हैं कि धर्म संस्थापक साक्षात् ईश्वर के अवतार भगवान् कृष्ण चन्द्र ने परस्त्रियों के साथ इस प्रकार का आचरण कैसे किया:—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवानशेन जगदीश्वरः॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ताकर्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम्॥

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रते ॥

श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-२७, २८, २९

इसके समाधान में श्री शुकदेव जी कहते हैं कि तेजस्वी पुरुषों को किसी प्रकार दोष नहीं लगता। वे तो सर्वभक्षण करने वाली अग्नि के समान सर्वथा स्वतंत्र हैं :—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥

श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ३३-३०

रास-क्रीड़ा-सम्बन्धी अन्तिम अध्याय को समाप्त करते हुए श्रीमद्भागवतकार कहते हैं, कि जो 'व्रज-वधुओं' तथा 'विष्णु' की क्रीड़ा-सम्बन्धी कथा को श्रद्धापूर्वक सुनते तथा वर्णन करते हैं वे परा भक्ति को प्राप्त करके भव-रोग से मुक्त हो जाते हैं :—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः,
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं,
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

नन्ददास भी पंचाध्यायी की समाप्ति इसी प्रकार करते हैं:—

इहि उज्जल-रस-माल, कोटि जतनन करि पोई ।
सावधान 'ह्वै पहिरौ, वरु तोरो मति कोई ॥
स्रवन, कीरतन, ध्यान-सार, सुमिरन कौ है पुनि ।
ग्यान-सार, हरिध्यान-सार, स्रुति-सार, गुही गुनि ॥
अघ-हरनी, मन-हरनी, सुन्दर-प्रेम-वितरनी ।
"नन्ददास" के कंठ बसौ, नित-मंगल-करनी ॥

भागवत का रास क्रीड़ा सम्बन्धी अंश हिन्दी के मध्यकालीन कवियों का इतना प्रिय विषय रहा है कई कवियों ने इसे

लिखकर अपनी लेखनी को पवित्र किया है। नन्ददास ही की भाँति 'सामनाथ' कवि ने भी 'रास-पंचाध्यायी' की रचना की है। श्रीमद्भागवत पर ही अवलम्बित होने के कारण दोनों कवियों के वर्णन प्रायः एक से हैं और कहीं कहीं यह कहना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि किसका वर्णन उत्कृष्ट है। इतने पर भी सोमनाथ की पंचाध्यायी अब तक अप्रकशित ही है। तुलना के लिये दोनों कवियों के कतिपय पदों को नीचे उद्धृत किया जाता है। भगवान् कृष्ण के रास का वर्णन करते हुए चन्द्रोदय का वर्णन प्रायः एक सा ही किया है :—

नन्ददास तथा सोमनाथ

ताही छिन उड़राज उदित, रस-रास-सहायक।
कुंकुम-मण्डित प्रिया-बदन, जनु नागर-नायक॥
कोमल-किरन अरुन नभ बन मैं व्यापि रही यों।
मनसिज खेल्यौ फागु, घुमरि घुरि रह्यौ गुलाल ज्यौं॥

(नन्ददास)

कियौ मनोरथ रमन कौ, निज माया अपनाय,
ता छन चन्द उदै भयो, पूरब दिशा रचाय।
बड़ी बेर में तिय मिली, यातैं हिय हुलसाय,
नायक मनु मुख-मंडलहिं; दिय कुमकुम लपटाय।

(सोमनाथ)

गोपियो के अधीर होने का वर्णन भी दोनों कवियों का उत्कृष्ट एवं समान ही हुआ है:—

ते पुनि तिहिं मग चलीं, रँगीली तजि गृह-संगम।
जनु पिंजरन तें छुटे घुटे नव-प्रेम विहगम॥
कोउ तरुनी गुन-मैं सरीर, तिन संग चली झुकि।
मात पिता पति बन्धु रहे झुकि, झुकि न रहीं रुकि॥

सावन सरिता रुकै कहूँ करौ कोटि-जतन-अति ।
कृष्ण हरे जिन के मन ते क्यों रुकें अगम-गति ॥

(नन्ददास)

खैंचि लियो मन कुँज विहारी,
लोक-लाज ब्रज-तियन बिसारी ।
निज-निज गृह तें इहि विधि डगरीं,
सिन्धुहिं मिलन सरित ज्यों सगरीं ।
जनु पिंजरन तें छुटी चिरैयाँ,
विविध रंग नहिं घिरैं घिरैयाँ ।
पति पितु मातु बन्धु की हटकीं,
रहि न सकीं स्याम सौं अटकीं ।

(सोमनाथ)

भारतीय साहित्य में जितना कृष्ण-चरित्र जटिल एवं गम्भीर है उतना संम्भवतः दूसरा नहीं । यदि महाभारत में श्रीकृष्ण एक चतुर राजनीतिज्ञ तथा महान् दार्शनिक के रूप में वर्तमान हैं तो श्रीमद्भागवत तथा हरि-

पंचाध्यायी में कृष्ण का स्वरूप

वंश-पुराण में उनका शक्तिमय रूप हो जाता है । लोक-कल्याण के लिए वे अनेक असुरों का संहार करते हैं । आगे चलकर पुराणों में ही कृष्ण के लीलामय रूप का भी दर्शन होता है और वास्तव में भाषा-साहित्य का इसी रूप से सम्बन्ध है ।

भाषा-सहित्य में कृष्ण का एक रूप हमें मैथिल-कोकिल विद्यापति में मिलता है । आप ने संस्कृत में कोमल-कान्त-पदावली के अधिनायक अमर कवि जयदेव के आदर्श पर ही राधा तथा कृष्ण के प्रेम को अंकित किया है जिसमें प्रधान रूप से शृङ्गार-रस की अभिव्यञ्जना हुई है । विद्यापति के प्रायः अधिकांश पद एक मात्र लौकिक प्रेम के ही अंग-प्रत्यंग स्वरूप

हैं; किन्तु आपने कतिपय ऐसे पदों की भी रचना की है जिसमें राधाकृष्ण के अलौकिक प्रेम का वर्णन है। मिथिला में विद्यापति चाहे भले ही वैष्णव कवि के रूप में प्रख्यात न हों; किन्तु चंडीदास के पथ-प्रदर्शक होने के कारण आप बंगाल में वैष्णव तथा भक्त कवि ही के नाम से विख्यात हैं।

भगवान् कृष्ण के दूसरे रूप का दर्शन हमें पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में होता है। इस काल में कृष्ण-भक्ति की एक लहर समस्त भारत को आप्लावित कर देती है। श्रीमद्भागवतकार ने वासुदेव भक्ति को वेद, यज्ञ, ज्ञान तथा तप आदि से श्रेष्ठ बतलाया है :—

वासुदेव परा वेदा वासुदेव परा सखाः ॥
वासुदेव परा योगा वासुदेव परा क्रियाः ॥
वासुदेव परं ज्ञानं वासुदेव परं तपः ।
वासुदेव परो धर्मो वासुदेव परा गतिः ॥

वास्तव में इस युग में भागवतकार की उपर्युक्त पुकार का अक्षरशः पालन हुआ। हम इसे 'भक्तियुग' कह सकते हैं। इस युग में वृन्दावन वैष्णव धर्म का केन्द्र बना जिसके फलस्वरूप ब्रजभाषा में अनेक भक्त कवि उत्पन्न हुए। सूरदास तथा नन्ददास इन कवियों में अग्रगण्य थे। आगे चलकर 'रीति-काल में कृष्ण के इस रूप में भी परिवर्तन हुआ। इस काल में वे भक्तों के आराध्य देव न होकर नायक बन गये और राधा नायिका बन गई। रीतिकाल के समस्त कवियों—जैसे बिहारी तथा देव आदि ने भगवान् कृष्ण को इसी रूप में अंकित किया और 'कन्हैया' शब्द एक प्रकार से 'नायक' का पर्यायवाची हो गया। श्रेणी-विभाजन की दृष्टि से हम इसे कृष्ण का तीसरा रूप कह सकते हैं।

कविवर नन्ददास ने भगवान् कृष्ण के दूसरे रूप को ही ग्रहण किया है। वे वास्तव में एक भक्त कवि हैं। शृंगार रस का प्राचुर्य्य होने के कारण कतिपय आलोचक उनके काव्य में लौकिक पक्ष की प्रधानता मानते हैं; किन्तु यदि विचार करके देखा जाय तो नन्ददास एक धार्मिक कवि थे। 'पुष्टिमार्ग' से उन्हें कृष्ण-चरित्र का जो सुन्दर अंश प्राप्त हुआ था, उसी ने उन्हें काव्य-रचना की ओर प्रेरित किया। इसलिए पारलौकिक पक्ष का सर्वथा त्याग कर केवल लौकिक दृष्टि से ही नन्ददास पर विचार करना उनके साथ अन्याय करना होगा। नीचे इन्हीं दोनों दृष्टियों से नन्ददास-कृत 'रास-पंचाध्यायी' पर विचार किया जायगा।

पंचाध्यायी में लौकिक पक्ष

लौकिक दृष्टि से पंचाध्यायी संयोग-शृङ्गार की एक सजीव रचना है जिसमें कृष्ण तथा गोपियों की रासक्रीड़ा का वर्णन है। सुधावर्षिणी मुरली-ध्वनि सुन ज्योत्स्ना-विमंडित रात्रि में गोपियां उत्सुक होकर कृष्ण-दर्शन के लिए घर से निकल पड़ती हैं। प्रेम में तल्लीन होने के कारण उन्हें लोक-मर्यादा का ध्यान तक नहीं रहता। वे कृष्ण के सन्निकट पहुँच कर उनके चारो ओर खड़ी हो जाती हैं। इसी समय चतुर नायक, लीला-प्रिय, श्रीकृष्ण को कुछ 'वक्रता' सूझती है। वे गोपियों को स्त्री-धर्म की शिक्षा देकर उन्हें घर लौट जाने के लिए कहते हैं। गोपियों को कृष्ण के इस व्यवहार से बड़ा आघात पहुँचता है। वे स्तब्ध होकर खड़ी हो जाती हैं। उनके बिम्बोष्ठ मुरझा जाते हैं तथा विरह के कारण वे दीर्घ-निश्वास लेने लगती हैं:—

जबै कह्यौ पिय जाउ, अधिक चित चिंता बाढ़ी।
पुतरिन की सी पांति, रहि गईं इकटक ठाढ़ी॥

दुख सों दबि छबि-सींव, ग्रीव लै चलीं माल सी।
अलक-अलिन के भार नमित जनु कमल-नाल सी॥
हिय भरि विरह-हुतास, उसासन सँग आवत झर।
चले कछुक मुरझाइ, मद भरे अधर-बिंब-वर॥

इसके पश्चात् गोपियां श्रीकृष्ण से तर्क पूर्ण अनुनय विनय करती हैं और अन्त में यमुना तट पर रास-क्रीड़ा आरम्भ होती है:—

उज्जल मृदु बालुका पुलिन अति सरस सुहाई।
जमुना जू निज कर-तरंग करि आपु बनाई॥
बैठे तहँ सुन्दर सुजान, सब सुख-निधान हरि।
विलसत विबिध विलास हास-रस हिय-हुलास भरि॥

साधारण लौकिक दृष्टि से गोपियों का इस प्रकार का आचरण नितान्त गर्हित प्रतीत होता है। वे कुल-बधुएँ हैं। अतएव रात भर कृष्ण के साथ उनका विहार करना उन्हें अश्लीलता तथा निर्लज्जता की चरम सीमा तक पहुँचा देता है।

किन्तु इसका एक पारलौकिक पक्ष भी है। सच तो यह है कि समस्त वैष्णव कवियों ने कृष्ण को 'परब्रह्म' परमात्मा के रूप में ही अंकित किया है।

पंचाध्यायी में पारलौकिक पक्ष

नन्ददास ने भी पंचाध्यायी में भगवान् के इसी रूप को ग्रहण किया है:—

परमातम परब्रह्म, सबन के अन्तरजामी।
नारायन-भगवान धरम करि सब के स्वामी॥

इस प्रकार कृष्ण को परमात्मा तथा गोपियों को अनेक आत्मायें मान लेने से नन्ददास की कविता का पारलौकिक पक्ष दृष्टि के सम्मुख आ जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से गोपियों का विरह लौकिक विरह नहीं है; किन्तु यह परमात्मा से आत्मा का वियोग है और कृष्ण से उनका मिलन आत्मा परमात्म

का सम्मिलन है। जिस प्रकार नदी समुद्र से मिलकर अपना अस्तित्व खो देती है, उसी प्रकार गोपियाँ भी कृष्ण से मिलकर अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रखतीं :—

आइ उमँग सों मिलीं रँगीली गोप-वधू यों।
नन्द-सुवन-नागर-सागर सों प्रेम-नदी ज्यों॥

आत्मा परमात्मा के चिरन्तन विरह का चित्र कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी एक स्थान पर खींचा है। वे कहते हैं :—

"हरि अहरह तोमार विरह"

राधा के कृष्णरूप में परिणत हो जाने की चर्चा मैथिल-कोकिल विद्यापति ने भी की है :—

'अनुदिन माधव माधव सुमिरत राधा भेलि मधाई'।

ब्रह्मपुराण में लिखा है कि सृष्टि की इच्छा से उस (परमात्मा) ने अपने को दो भागों में विभक्त किया। उसका एक भाग पुरुष और दूसरा स्त्रीरूप में आविर्भूत हुआ :—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यान्तु सोऽसृजत् विविधाः प्रजाः॥

—ब्रह्म० १-५२

इस प्रकार पुरुषरूप में परमात्मा तथा स्त्रीरूप में आत्मा की कल्पना भारतीय दार्शनिकों के दीर्घकाल के चिन्तन का फल है; किन्तु एक सौन्दर्यमय बालरूप में परमात्मा की प्रतिष्ठा आचार्य वल्लभ ने ही की। कृष्ण के इसी रूप को लेकर सूरदास, नन्ददास तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने अपने अमर काव्य की रचना की। यद्यपि कृष्ण की बाल, यौवन तथा विरह लीला के वर्णन में इन कवियों ने शृंगाररस की ही प्रधानता रखी; किन्तु भक्ति से ओतप्रोत होने के कारण सर्वत्र इनकी कविता में दिव्य शृंगार की झाँकी है। आगे के कवियों की

इस काव्य का विषय वही है। अतएव इसकी गणना भी भ्रमरगीत के अन्तर्गत की जा सकती है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि 'भ्रमरगीत' का उद्गम-स्थल श्रीमद्भागवत है। अब संक्षेप में इस बात पर विचार किया जाता है कि श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास जी के भ्रमरगीत में क्या अन्तर है।

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत और नन्ददास के भ्रमर-गीत की तुलना

श्रीमद्भागवत में यह कथा इस प्रकार है:—कृष्ण जी के मित्र उद्धव एक दिन उनसे मिलते हैं। इधर-उधर की बात-चीत होने के बाद भगवान् कृष्ण उद्धव के द्वारा नन्द-यशोदा तथा गोपियों के लिए सन्देश भेजते हैं। सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर उद्धव ब्रज में जाते हैं और वहाँ सर्वप्रथम नन्द से मिलते हैं। नन्द जी स्वागत के पश्चात् उनसे कृष्ण का कुशल-क्षेम पूछते हैं। कृष्ण के गुणों का स्मरण करके यशोदा एवं नन्द प्रेम-विह्वल हो उठते हैं। फिर उद्धव का उपदेश प्रारम्भ होता है। वे नन्द-यशोदा से कहते हैं कि कृष्ण के लिए कोई उत्तम, अधम अथवा सम-विषम नहीं है। उनके न तो माता पिता हैं और न पुत्रादि। सत, रज और तम गुणों से भी उनका कोई संबंध नहीं है। वे सम्पूर्ण भूतों में वर्तमान हैं। अतएव उनके लिए दुःख प्रकट करना ठीक नहीं :—

मा खिद्यतं महाभाग द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥
न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियोवास्त्यमानिनः ।
नोत्तमो नाधमो नापि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥
न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।
क्रीडार्थः सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४६

इस प्रकार श्रीमद्भागवत् के छियालीसवें अध्याय में केवल नन्द तथा उद्धव में ही बातचीत होती है। इसके पश्चात् सैंतालीसवें अध्याय में गोपियों तथा उद्धव का संवाद प्रारम्भ होता है। कमल-नयन, प्रलम्बबाहु कृष्ण-सखा उद्धव के पीताम्बर तथा कुण्डलादि को देखकर गोपियाँ उत्सुकता-पूर्वक उनके निकट आती हैं तथा कृष्ण के समाचार जानने को आतुरता प्रकट करती हैं :—

तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥
शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥२॥
तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षण सूनृतादिभिः ।
रहस्य पृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥३॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

फिर गोपियां कृष्ण के गुणों का स्मरण कर के विलाप करती हैं। इसी क्षण एक भ्रमर कहीं से उड़ता हुआ आ पहुँचता है। बस, उस भ्रमर में ही कृष्ण और सन्देशवाहक उद्धव के अभिन्न स्वरूप की कल्पना करके गोपियाँ प्रेमविह्वल हो उपरोधिक भाषण करने लगती हैं :—

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोर बाल्ययोः ॥ १० ॥
काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसंगमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

इसके पश्चात् उद्धव गोपियों से कृष्ण का सन्देश कह कर उन्हें शान्त करते हैं और अन्त में व्रजभूमि, नन्द तथा व्रज-वधुओं की वन्दना करते हुए लौट जाते हैं :—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
या सां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥
—श्री० भा० दश० स्क० पूर्वा० अ० ४७

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट रूप से पाठकों के ध्यान में आ जायगी कि भागवतकार ने गोपियों के साथ साथ नन्द-यशोदा के कृष्णविरह को भी काफी महत्व दिया है। यही कारण है कि भागवत के एक सम्पूर्ण अध्याय में केवल नन्द-यशोदा के विरह का ही चित्रण हुआ है। किन्तु नन्ददास के लिए नन्द-यशोदा का विरह-वर्णन मानो अनावश्यक था, और इसी लिए उन्होंने केवल गोपियों के विरह-चित्रण तक ही अपने को सीमित रखा है।

एक बात और है। श्रीमद्भागवत में भ्रमर का प्रवेश सैंतालीसवें अध्याय में उस समय होता है जब गोपी-उद्धव-संवाद प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार नन्ददास ने भी भ्रमर को ही आधार मानकर गोपी उद्धव-संवाद प्रारम्भ कराया है। इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास का भ्रमरगीत श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध) के केवल सैंतालीसवें अध्याय पर ही अवलम्बित है।

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत तथा नन्ददास के भ्रमरगीत की तुलना करते हुए एक बात और भी मालूम होती है। वह यह कि भागवत में उद्धव के उपदेश से गोपियाँ एक प्रकार से सन्तुष्ट हो जाती हैं; किन्तु नन्ददास की गोपियाँ सन्तुष्ट नहीं होती हैं। वे तर्क करती हैं और अन्त में उद्धव को निरुत्तर करके यह पूर्णतया सिद्ध कर देती हैं कि ज्ञान-मार्ग से भक्ति-

मार्ग ही श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त भागवत में यह गीत उतने विस्तार से भी नहीं मिलता जितना नन्ददास की रचना में। उद्धव के मथुरा जाने का प्रसंग श्रीमद्भागवत में बहुत ही संक्षिप्तरूप में, केवल एक ही छंद में, वर्णित है। परन्तु नन्ददास जी ने इसका बहुत ही विस्तृत वर्णन अत्यन्त सुन्दर रूप में किया है।

पहिली बात जो इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है वह यह है कि सूरदास ने श्रीमद्भागवत की कथा को अत्यन्त विस्तृत कर दिया है। उन्होंने तीन भ्रमर-गीत लिखे हैं जिनमें से पहिले में कृष्ण के गोकुल में भेजे हुए सन्देश का, दूसरे में कुब्जा के संदेश का तथा तीसरे में गोकुल पहुँचने पर उद्धव और गोपियों के संवाद का वर्णन है। किन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत में केवल गोपी-उद्धव के संवाद का वर्णन है। सूरदास ने गोपियों के मन की अवस्थाओं का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इसके विपरीत नन्ददास की रचना में ज्ञान तथा भक्ति का विवेचन मुख्य हो जाता है और मनोवेगों का गौण।

नन्ददास तथा सूरदास के भ्रमरगीतों की तुलना

नन्ददास के भ्रमरगीत में उद्धव स्वयं दार्शनिक सिद्धान्तों का उपदेश देते हैं, लेकिन सूरसागर के भ्रमरगीत में आप कृष्ण के संदेश रूप में ही उन्हें प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त सूरसागर में भ्रमर उद्धव के आगमन के पूर्व ही आ जाता है, किन्तु नन्ददास का भ्रमर श्रीमद्भागवत की भाँति बाद में आता है। इसके अतिरिक्त सूरदास की गोपियाँ केवल हृदय के कोमल भाग का मधुर स्पर्श करके ही ज्ञान पर भक्ति की श्रेष्ठता प्रस्थापित करती हैं, किन्तु नन्ददास के भ्रमरगीत की गोपियाँ बोधवृत्ति को

जागृत करके तर्क-वितर्क भी करती हैं। उदाहरणार्थ, उद्धव जब यह कहते हैं कि कृष्ण निर्गुण तथा निर्विकार हैं; वे हाथ, पैर, मुख, चक्षु, नासिका, वाणी इत्यादि इन्द्रियों से रहित हैं, इस स्थूल जगत् तथा माया से अलग होकर केवल ज्ञान की सहायता से ही उनकी उपलब्धि हो सकती है तब नन्ददास की गोपियाँ अत्यन्त तर्क के साथ, अकाट्य युक्तियों द्वारा, उनका खण्डन करती हैं। वे कहती हैं :—

जो मुख नाहिन हतो कहो किन माखन खायो ?
पायन बिन गोसङ्ग कहो बन-बन को धायो ?
आँखिन में अंजन दयो गोवर्धन लयो हाथ।
नन्द-जसोदा-पूत हैं कुँवर कान्ह व्रजनाथ ॥
सखा सुनु स्याम के ॥

भला इतने प्रत्यक्ष प्रमाणों के रहते हुए ब्रह्म के निर्गुण रूप को कैसे स्वीकार किया जाय !

नन्ददास जी का भ्रमरगीत भागवत के आधार पर रचा गया है सही; परन्तु इनके कथा-प्रसंग और क्रम में एक खास मौलिकता मौजूद है। यहाँ पर कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं, जिनसे नन्ददासजी के भ्रमर-गीत का कथा-क्रम स्पष्ट रूप से पाठकों के ध्यान में आ जायगा। आरम्भ में उद्धव गोपियों के शील तथा प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं :—

नन्ददास-कृत भँवरगीत का क्रम

कहन स्याम-सन्देस एक मैं तुम पै आयो।
कहन-समय संकेत कहूँ अवसर नहिं पायो ॥
सोचत ही मन में रह्यो कब पाऊँ इक ठाउँ।
कहि संदेस नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाउँ ॥
सुनो व्रज-नागरी।

कृष्ण का नाम सुनते ही गोपियाँ प्रेम-विह्वल हो उठती हैं। उनका रोम-रोम पुलकायमान हो जाता है तथा उनके नेत्र अश्रु-पूर्ण हो उठते हैं। वे उद्धव को कृष्ण-पार्षद तथा सुहृद जानकर पाद्यार्घ देती हैं और उनसे कृष्ण का कुशल-क्षेम पूंछती हैं। उद्धव कृष्ण तथा अन्य यदुवंशियों के कुशलादि की चर्चा करते हुए इस बात को भी प्रकट करते हैं कि कृष्ण थोड़े ही दिनों में यहाँ आवेंगे; अतएव अधीर होने की आवश्यकता नहीं। इस सन्देश को सुनते ही गोपियाँ मूर्छित हो जाती हैं :—

सुनि मोहन-संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयो,
पुलकित आनन-कमल अंग आवेस जनायो।
विह्वल ह्वै धरनी परीं ब्रजवनिता मुरझाय,
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधो बैन सुनाय।
सुनो ब्रजनागरी।

इसके पश्चात् उद्धव की ज्ञान-गाथा प्रारम्भ है। आप गोपियों से कहते हैं:—ब्रह्म की सत्ता तो जल, स्थल, आकाश आदि में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है। जिन्हें तुम 'कान्ह' (कृष्ण) कहती हो वे तो निर्विकार तथा निर्लिप्त हैं। उनके माता पिता भी नहीं हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड एक दिन उन्हीं में विलीन हो जायगा वे तो केवल लीला रूप में ही अवतीर्ण हुए हैं और केवल योग से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। गोपियाँ इसका उत्तर कितने स्वाभाविक ढंग से देती हैं। देखिये :—

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधो जेहि भावै,
प्रेम सहित हम पास नन्द नन्दन गुन गावै।
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि,
प्रेम-पियूषै छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि।
सखा सुनु स्याम के।

अकाट्य युक्तियों तथा प्रत्यक्ष प्रमाणों के रहते हुए भी जब प्रतिपक्ष वितण्डावाद करता ही जाता है तो उस पर क्रोध आ जाता है। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह होता है कि विवाद करने वाले की ओर से स्वाभाविक उपेक्षा हो जाती है और चित्त-वृत्ति दूसरी ओर संचरण करने लगती है। गोपियों की भी ठीक यही दशा होती है। जब अनेक प्रमाणों के रहते हुए भी उद्धव अपने अद्वैत-ज्ञान-कथन से तनिक भी विचलित नहीं होते तब अन्त में गोपियाँ क्रोधवश उन्हें नास्तिक कहकर संबोधित करती हैं। इस प्रकार उद्धव की ओर उपेक्षावृत्ति धारण करते ही गोपियों का ध्यान स्वाभाविक रीति से कृष्ण की ओर आकर्षित हो जाता है। उनके नेत्रों के सामने कृष्ण का मनमोहक रूप उपस्थित हो जाता है और वे उसके दर्शन में तन्मय हो जाती हैं। नन्ददास ने इस मनोवैज्ञानिक स्थल को ढूँढ़ निकालने में एक जन्म-जात कवि एवं कुशल कलाकार का परिचय दिया है। अन्य भ्रमर-गीत-कार इस मार्मिक स्थल तक न पहुँच सके। देखिए किस प्रकार गोपियाँ कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन कर रही हैं :—

ऐसे में नँदलाल रूप नैनन के आगे,
आय गये छवि छाय बने पियरे उर वागे।

कृष्ण के संमुख आते ही अत्यंत आर्त्त भाव से गोपियाँ उनसे प्रार्थना प्रारम्भ कर देती हैं :—

अहो नाथ रमानाथ और जदुनाथ गोसाईं
नद-नँदन विडराति फिरति तुम बिन सब गाईं।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो-ग्वालन सुख देहु,
दुख-निधि-जल हम बूड़हीं कर अवलंबन देहु।
निठुर ह्वै कहँ रहे

इस प्रार्थना के पश्चात् गोपियों का उपालंभ आरम्भ होत है। वे आपस में कहती हैं कि दूसरों को कष्ट देना कृष्ण वे

लिये कोई नई बात नहीं है। ये तो कई जन्म के निर्दयी हैं :—

इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू विचित्र,
पय पीवत ही पूतना मारी बाल चरित्र।
मित्र ये कौन के।

जग्य करावन जात हे विस्वामित्र समीप,
मग में मारी ताड़का रघुवंशी कुलदीप।
बाल ही रीति यह।

सीता जू के कहे तें सूपनखा पै कोपि।
छेदि अंग विरूप कै लोगन लज्जा लोपि।
कहा ताकी कथा।

इस प्रकार कृष्ण की निष्ठुरता का वर्णन करती हुई गोपियाँ उनके प्रेम में मग्न हो जाती हैं :—

यहि विधि होइ आवेस परम प्रेमहि अनुरागी।
और रूप पिय चरित्त तहाँ ते देखन लागी।
रँगीली प्रेम की।

गोपियों के इस विशुद्ध प्रेम का प्रभाव उद्धव पर भी पड़ता है :—

देखत इनको प्रेम नेम ऊधव को भाज्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ।
मन में कह रज पाय कै लै माथे निज धारि,
हौं तो कृतकृत ह्वै रह्यौ त्रिभुवन आनँद बारि।
वंदना जोग ये।

जिस समय ये बातें हो रहीं थीं, उसी समय कहीं से उड़ता हुआ एक भ्रमर आ पहुँचा। बस, गोपियों को उद्धव को फटकारने के लिए एक अच्छा मौका मिल गया। वे भ्रमर को ही सम्बोधित करके उद्धव को जली-कटी सुनाने लगीं :—

जिनि परसो मम पाँवरे, तुम मानत हम चोर,
तुमहीं सों कपटी हुते मोहन नंदकिसोर।
आपन सम हमको कियौ चाहत है मतिमंद,
कपट के छंद सों।

कोउ कहै अहो मधुप स्याम जाको तुम चेला,
कुबजा तीरथ जाय कियो इंद्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माँहिं,
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाहिं।
पधारो रावरे।

इस प्रकार कृष्ण के गुणों का स्मरण करती हुई गोपियाँ एक बार करुणार्द्र हो उठीं :—

ता पाछे इकबार ही रोइँ सकल ब्रजनारि,
हा करुनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि।
फाटि हियरो चल्यो।

गोपियों के प्रेम-प्रवाह में उद्धव की ज्ञान-गरिमा बह चली। उन्हें अपना अज्ञान सूझने लगा तथा हृदय से भक्ति का स्रोत उमड़ पड़ा :—

धन्य धन्य ये लोग भजत हरि कौं जो ऐसे,
और जु पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ज्ञान कौं उर मद रह्यो उपाधि,
अब जान्यौं ब्रज-प्रेम कौं लहत न आधौ आधि।
वृथा स्रम करि थके।

* * *

अब रहि हौं ब्रजभूमि को ह्वै मग मारग धूरि,
बिचरत पद मो पै परैं सब सुख जीवन-मूरि।
मुनिन हूँ दुर्लभै।

गोपियों के प्रेम का उद्धव पर इतना प्रभाव पड़ा कि मथुरा पहुँचते ही उन्होंने भावावेश में कृष्ण से कहा :—

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी,
जबही लौं नहिं लखौ तवहिं लौं बाँधी मूँठी।
मैं जान्यौं ब्रज जाय कै तुम्हरो निर्दय रूप,
जो तुमरे अवलम्ब ही वाकौं मेलौ कूप।
कौन यह धर्म है।

पुनि पुनि कहै अहो चलौ जाय वृन्दावन रहिये,
प्रेम पुंज कौ प्रेम जाय गोपिन सँग लहिये।
और काम सब छाँड़ि कै उन लोगन सुख देहु,
नातरु टूट्यो जात है अवहीं नेह सनेहु।
करौगे तौ कहा।

उद्धव की बातें सुन कर कृष्ण ने उनका संशय निवारण किया तथा अन्त में उन्हें अपना वास्तविक रूप दिखलाया :—

मो मैं उनमैं अन्तरो एकौ छिन भरि नहि,
ज्यौं देखौ मो माहिं वै त्यौं मैं उनहीं माहिं।
तरङ्गनि वारि ज्यौं।

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधव भ्रमहि निवारि डारि मुख मोह की जारी।
अपनौ रूप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय।

* * *

बस इन्हीं पंक्तियों के साथ नन्ददास अपना गीत भी समाप्त कर देते हैं। उन्होंने अपने भ्रमरगीत में व्यर्थ विस्तार करके प्रबन्ध को बढ़ाने की कोशिश नहीं की है। जितना कुछ लिखा है, बहुत ही सरस, सरल और साभिप्राय है। भागवत के आधार पर लिखा हुआ उनका यह खण्डकाव्य वास्तव में बहुत ही मधुर है।

नन्ददास आचार्य वल्लभ के पुत्र गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी के शिष्य थे; अतएव उनके दार्शनिक विचारों को समझने के लिये वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों को जान लेना परमावश्यक है।

नन्ददास के दार्शनिक विचार

श्रुतियों की प्रामाणिकता पर आचार्य शंकर ने जिस अद्वैतवाद को प्रस्थापित किया उसकी सत्यता की अनुभूति—वैयक्तिक साधना पर ही अवलंबित होने के कारण—वह केवल ज्ञानियों की वस्तु रह गई। इसके फलस्वरूप शंकर का ब्रह्म आत्मनिष्ठ ज्ञानियों के ही चिन्तन तथा मनन का विषय रहा। जनसाधारण को तो ऐसे लोकरंजक तथा लोकपालक सगुण ईश्वर की आवश्यकता थी जो उनके दुःखों को निवारण करता। इस अभाव की पूर्ति के लिए विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत जैसे वाद प्रचलित हुए। सिद्धान्त पक्ष मे श्रीवल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवादी थे। आप ने विष्णुस्वामी के सिद्धान्तों को ही विकसित रूप में जनता के सम्मुख उपस्थित किया। आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म से विभिन्न कोई सत्ता नहीं है; जीव भी ब्रह्म ही है और जगत् भी ब्रह्म ही है। श्रीवल्लभाचार्य जी का सिद्धान्त इससे तनिक भिन्न है। आपके अनुसार सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म स्वेच्छानुसार अपने इन तीनों रूपों को कभी तो प्रकट करता है और कभी इनका तिरोभाव कर लेता है। चैतन्य जगत् इन्हीं तीनों के अंशतः आविर्भाव से सत्तात्मक होता है। ब्रह्म से आत्मा की उत्पत्ति उसी प्रकार हुई है जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से चिनगारी की। माया भी ब्रह्म की इच्छानुगामिनी शक्ति है। जीव में जब उपर्युक्त तीनों रूपों का आविर्भाव रहता है और मायाकृत तिरोभाव दूर हो जाता है तब वह अपने शुद्ध ब्रह्म रूप में आ जाता है। यह ईश्वर के अनुग्रह से ही हो सकता है जिसको आचार्य ने 'पुष्टि' संज्ञा दी

है। इसी कारण श्रीवल्लभाचार्य का मार्ग 'पुष्टि-मार्ग' के नाम से प्रख्यात है।

आचार्य वल्लभ के अनुसार ब्रह्म तथा जीव के निम्नलिखित प्रधान गुण हैं :—

ब्रह्म	जीव
(१) ऐश्वर्य्य	दीनत्व
(२) वीर्य	सर्वदुःख-सहन
(३) यशस्	सर्वहीनत्व
(४) श्री	जन्मादिसर्वापद्विषयत्व (जन्मादि समस्त आपत्तियों के विषय)
(५) ज्ञान	देहादिस्वहंबुद्धि (देहादि को ही अहम् अर्थात् मैं हूँ मानना)
(६) वैराग्य	विषयासक्ति

उपासना के क्षेत्र में श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण को ही सर्वस्व माना। मोक्ष के दो उपायों—ज्ञान तथा भक्ति में से आपने भक्ति को ही श्रेष्ठ बतलाया ; ज्ञान द्वारा मोक्ष में आत्मा अक्षर (ब्रह्म) में लीन हो जाती है; किन्तु भक्ति द्वारा मोक्ष में वह कृष्ण में लीन रहती है।

शंकर तथा वल्लभ, दोनों के दार्शनिक तत्वों पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शंकराचार्य 'एकत्ववादी' तथा वल्लभाचार्य 'अनेकत्ववादी' हैं। आचार्य शंकर के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या है; किन्तु वल्लभाचार्य के अनुसार व्यक्तिगत आत्माओं की भी सत्ता है। आप के ब्रह्म तथा जीव में इतना ही अन्तर है कि ब्रह्म का अंश होते हुए भी जीव में 'आनन्द' गुण व्यक्त नहीं है।

वल्लभाचार्य संसार को मिथ्या नहीं मानते। आपके अनुसार ईश्वर तथा जगत् दोनों सत्य हैं। जिस प्रकार कुम्भ-

कार मिट्टी से घट की सृष्टि करता है, उस प्रकार से ईश्वर जगत की सृष्टि नहीं करता। कुम्भकार के उदाहरण में कुम्भकार तथा मिट्टी दो पृथक वस्तुएँ हैं; किन्तु जगत की सृष्टि के संबंध में ईश्वर कारण तथा वस्तु दोनों है। वह अपने ही को जगत्-रूप में परिवर्तित कर देता है। जिस प्रकार स्वर्ण तथा स्वर्ण के आभूषण में केवल रूप का भेद है, वस्तु का नहीं, उसी प्रकार ईश्वर तथा जगत में भी केवल रूप का ही अन्तर है। संक्षेप में वल्लभाचार्य के दार्शनिक विचारों के संबंध में इतना जान लेना पर्य्याप्त होगा। कविवर नन्ददास वल्लभ-सम्प्रदायी तथा 'अष्टछाप' के कवियों में प्रमुख थे। अतएव आप के भी दार्शनिक विचार वही थे जो आचार्य वल्लभ के। इस संबंध में एक बात और भी जान लेना परमावश्यक है। वास्तव में काव्यरचना के समय दार्शनिक तत्वों की विवेचना करना कवि का उद्देश्य नहीं रहता। वह तो अत्यन्त रमणीय शब्दों में अपने हृद्गत भावों की अभिव्यक्ति करता हुआ अग्रसर होता जाता है। किन्तु उसकी रचना में प्रसङ्गवश कतिपय ऐसे शब्द तथा विचार आ जाते हैं जिससे उसके दार्शनिक विचारों की भी अभिव्यंजना हो जाती है। 'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवर-गीत' में भी ऐसा ही हुआ है।

नन्ददास जी ने भी अपने सम्प्रदायानुसार श्रीकृष्ण को ब्रह्म के ही रूप में अंकित किया है। रास-पंचाध्यायी में श्रीकृष्ण-स्वरूप का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं :—

> मोहन अद्भुत-रूप कहि न आवै छवि ताकी।
> अखिल-अंड-व्यापी जु ब्रह्म, आभा कछु जाकी॥
> परमातम परब्रह्म, सबन के अन्तरजामी।
> नाराइन भगवान, धरम करि सब के स्वामी॥
>
> —रा० पं० अ० १–४१; ४२

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि आचार्य वल्लभ के अनु-सार 'माया' भी ब्रह्म की इच्छानुगामिनी शक्ति है'। 'रास-पचाध्यायी' में नन्ददास ने इसे अत्यन्त स्पष्ट रूप में अङ्कित किया है। गोपियों के उत्तर में भगवान् स्वयं कहते हैं—मेरी वशवर्तिनी माया समस्त संसार को अपने वश में किए हुए है; किन्तु तुम लोगों की माया मेरे मन को भी मोहित कर लेती है :—

सकल-विस्व अप-वस करि, मो माया सोहति है।
प्रेम-मई तुम्हरी माया, मो मन मोहति है॥

—रा० पं० अ० ४–२६।

'अद्वैतवाद' के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत्य है, और सब माया है। ब्रह्म और माया के गुण में भी अन्तर है। इसी बात को अद्वैतवादी उद्धव गोपियों से कहते हैं :—

माया के गुन और, और हरि के गुन जानौ।
उन गुन को इन माँहि आनि काहे कौ सानौ?
जाके गुन औ रूप को जानि न पायो भेद।
तातैं निगुन रूप को बदत उपनिषद वेद॥
सुनौ ब्रजनागरी।

—भँ० गी० २१

किन्तु वल्लभ-सम्प्रदायानुयायी नन्ददास को 'अद्वैतवाद' का माया-सम्बन्धी यह सिद्धान्त मान्य नहीं। अतएव उनकी गोपियाँ भी अत्यन्त स्वतंत्र भाव से इसका खंडन करती हैं:—

जौ उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तैं?
बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहौ कहाँ तैं?
वा गुन की परछाँह री माया-दर्पन-बीच।
गुन तैं गुन न्यारे भये अमल वारि जल कीच।
सखा सुनु स्याम के।

—भँ० गी० २०

श्रीमद्भागवतकार ने गोपियों के नैसर्गिक प्रेम, कृष्ण की 'लीला', 'रास' तथा 'मुरली' का वर्णन किया है। सूरदास, नन्ददास तथा अष्टछाप के अन्य वैष्णव कवियों ने भागवत से भी चढ़कर इनका वर्णन किया है। जिस प्रकार गोपी तथा कृष्ण साधारण सांसारिक पुरुष नहीं; किन्तु आत्मा तथा ब्रह्म-स्वरूप हैं उसी प्रकार से कृष्ण की 'लीला' 'रास' तथा 'मुरली' भी साधारण वस्तुएँ नहीं; किन्तु इनमें भी विशेषता है। अब आगे इसी विषय पर कुछ विचार प्रकट किये जायेंगे।

लीला

लीला शब्द का साधारण अर्थ क्रीड़ा, विहार अथवा कौतुक है; किन्तु वल्लभाचार्य ने एक विशिष्ट अर्थ में इसका प्रयोग किया है। आप 'अणु भाष्य' में लिखते हैं:—न हि लीलायां किञ्चित्प्रयोजनमस्ति। लीलाया एव प्रयोजनत्वात्। ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुयोक्तुं शक्या। सा लीला कैवल्यं मोक्षः। तस्य लीलात्वेऽप्यन्यस्य तत्कीर्तने मोक्ष इत्यर्थः। लीलैव केवलेति वा।

अर्थात् लीला का उद्देश्य लीला ही है, जो भगवान् अपने भक्तों के अर्थ अवतार लेकर स्वाभाविक ही करते हैं। कोई और प्रयोजन नहीं। सर्वशक्तिमान होने के कारण ईश्वर को लीला बंधन में नहीं डाल सकती। यह लीला कैवल्य है। यद्यपि ईश्वर लीला में व्यस्त है, तथापि उसके संकीर्तन से अन्य प्राणियों को मोक्ष मिल सकती है। यह लीला स्वयं पूर्ण है।

नन्ददास ने 'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवरगीत' में 'लीला' का प्रयोग इसी भाव में किया है—देखिये, शुकमुनि और गोपियाँ—यही नहीं; बल्कि सम्पूर्ण जड़चेतन पर भगवान् की इस लीला का क्या प्रभाव है:—

हरि-लीला-रस-मत्त मुदित नित विचरति जग मैं।
अद्‌भुत-गति कतहूँ न अटक ह्वै निसरति मग मैं॥
—रा० पं० अ० १-२

श्री वृन्दावन चिद्‌घन, कछु छवि बरनि न जाई।
कृष्ण ललित-लीला के काज धरि रह्यौ जड़ताई॥
—रा० पं० अ० १-२२

सकल जन्तु अविरुद्धि जहाँ हरि मृग सँग चरहीं।
काम क्रोध मद लोभ-रहित लीला अनुसरहीं॥
—रा० पं० अ० १-२४

मोहन लाल रसालहिं, लीला इनहीं सोहैं।
केवल तनमैं भई; न जानैं कछु हम को हैं॥
— रा० पं० अ० २-२२

लीला-गुन अवतार ह्वै धरि आये तन स्याम।
जोग जुगुति सों पाइये परब्रह्म पुर धाम॥
—भँ० गी० ११

ऊपर के पदों का मनन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान् कृष्ण की 'लीला' कोई साधारण कौतुक नहीं। इसी लीला के रस में मत्त रहने के कारण श्रीशुकदेव जी अबाध गति से सर्वत्र परिभ्रमण करते हैं तथा सर्व-सौन्दर्य सम्पन्न श्रीवृन्दावन भी जड़ता धारण किए हुए है। सिंह तथा मृग आदि पशु एक दूसरे के विरुद्ध होने पर भी, भगवान् की लीला के प्रभाव में आकर काम, क्रोध, मद, लोभ से रहित होकर एक साथ संचरण करते हैं। भगवान् कृष्ण के वियोग में भी यही 'मन-हरन लीला' गोपियों को सच्चिदानन्दस्वरूप का अनुभव कराती है। वे इसमें तन्मय होकर संयोग-वियोग का अपना सब सुख-दुख भूल जाती हैं।

शास्त्रों में परब्रह्म परमात्मा का "रसो वै सः" करके निर्वचन किया गया है। हमारे भक्त कवियों ने भी श्रीकृष्ण को षोडशकलापूर्ण परब्रह्म माना है। इसलिए श्रीकृष्ण
रास में भी सब रसों की अभिव्यक्ति करके उसको रासलीला नृत्यसंगीत—इत्यादि के रूप में प्रकट किया है। श्रीधर स्वामी ने "रसानां समूहो रासः" कहकर उपर्युक्त भाव को ही दर्शाया है। भगवान् कृष्ण व्रजगोपिकाओं का मण्डल बाँधकर यमुना किनारे शरच्चन्द्रिका में संगीतनृत्य करते थे। श्रीवल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधनी टीका में "बहुनर्तकीयुक्तो नृत्यविशेषो रासः" कहकर यही अभिप्राय प्रकट किया है। सब गोपिकाएँ रस के केन्द्रस्वरूप रसिकशिरोमणि के अन्तर से बरसने वाले प्रेमरस में मत्त होकर इसी "रास" के अपूर्व आनन्द का अनुभव करती हुई तल्लीन हो जाती थीं। वर्तमान समय में रासक्रीड़ा में लोग अश्लीलता का अनुभव करने लगे हैं। परन्तु इससे हम नहीं कह सकते कि सचमुच ही यह क्रीड़ा कामोत्तेजक या श्लील है। वास्तव में श्लीलता और अश्लीलता भाव अपने अपने मनोविकारों पर निर्भर है। यदि हम अपने मनोविकारों को शुद्ध करके श्रीकृष्ण को परब्रह्म-स्वरूप मानकर, राधा और गोपियों को उनकी अनन्य भक्त मानकर—रासक्रीड़ा को देखें और उसमें भक्ति का ही स्वरूप अवलोकन करके सात्विक रमण करें, तो यह असम्भव नहीं है। साहित्य के उद्भट आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती रास की जो व्याख्या दे रहे हैं, उसको देख कर तो आजकल के श्लीलता के समर्थक और भी अधिक नाक-भौं सिकोड़ेंगे। वह व्याख्या इस प्रकार है :—

नृत्यगीतचुम्बनालिङ्गनादीनां रसानां समूहो रासस्तन्मयी या क्रीड़ा ताम् अनुव्रतैस्तादार्नी परस्परैकमत्येन स्वानुकूलैः।

अन्योऽन्यमावद्धाः संग्रथिता वाहवो यैस्तैस्सह रासः॥

अर्थात् आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती के मत से केवल बहुत सी नर्तकियों के साथ नृत्य विशेष को ही रास नहीं कहना चाहिए; बल्कि इस रास में नृत्यगीत और आलिंगन, चुम्बन तक का समावेश किया गया है। इसमें नर्तक और नर्तकियां दोनों एक दूसरे से अनुव्रत, एकमत और परस्पर अनुकूल होकर और एक दूसरे से वाहुगुंफित हो परस्पर आवद्ध होते हैं। इतना होने पर भी उस रास में उनको अश्लीलता दिखाई नहीं देती। फिर इस रासमंडल में केवल एक मात्र नटनागर श्रीकृष्ण का ही अन्तर्भाव नहीं है; किन्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उनके अन्य सखा भी सम्मिलित रहते हैं। रास का सामूहिक आनन्द अनेक पुरुष नट और अनेक स्त्री नर्तकियां मिलकर प्राप्त करती हैं। जीव गोस्वामी के मत से एकाधिक पुरुषों का रास में सम्मिलित रहना सिद्ध है। आप कहते हैं:—

नटैर्गृहीत कण्ठीनामन्योन्यात्तकरस्त्रियाम्।
नर्तकीनां भवेद्रासो मण्डलीभूय नर्तनम्॥

इस प्रकार के रास में अनेक नट और अनेक नर्तकियां परस्पर एक दूसरे के गले में में हाथ डालकर और हाथों में हाथ डाल कर मण्डलाकार नृत्य करती हैं। इस रासक्रीड़ा को यदि पश्चिमी ढंग के डांस (Dance) की उपमा दी जाय, तो इसमें अश्लीलता का आरोप किया जा सकता है, परन्तु कृष्णभगवान् जिनको कि भागवत-धर्म में षोड़शकलापूर्ण साक्षात् परब्रह्म माना गया है, उनकी उपस्थित में तो इसको भक्तिरस का एक सुन्दर और सात्विक दृश्य ही कहा जायगा। महाकवि नन्ददास जी ने भी अपनी रास-पंचाध्यायी में इसी रास का अद्भुत वर्णन किया है:—

जो व्रजदेवी निरतति मंडल रास महाछवि।

सो रस कैसे बरनि सकै ऐसो है को कबि ॥
ग्रीव ग्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बढ़ी अति ।
लटकि लटकि मुरि निरतति कापै कहि आवति गति ॥
छवि सौं निरतनि लटकनि मटकनि मंडल डोलनि ।
कोटि अमृत सम मुसिकनि मंजुल ता-थेइ बोलनि ॥

रा० पं० अ० ५, २६-२८

रासलीला का प्रभाव वर्णन करते हुए नन्ददास जी कहते हैं :—

अप-अपनी गति-भेद, सबै निरतनि लागीं जब ।
मोहे गँधरब ता छिन, सुन्दरि गान कियौ तब ॥

रा० पं० अ० ५—३०

रास-लीला में गोपियों का गान सुन कर रागी गन्धर्वों के मोहित हो जाने में कोई आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु यहाँ तो विरागी मुनि तक उसे सुन कर मोहित हो जाते हैं। इतना ही नहीं, जड़ 'शिला' तक उसे सुनकर 'सलिल' में और 'सलिल' 'शिला' में परिवर्तित हो जाता है। वायु, शशि आकाश स्थित समस्त नक्षत्र तथा सूर्य तक उसे सुनने के लिए विरम जाते हैं :—

अद्भुत-रस रह्यो रास, गीति धुनि सुनि मोहे मुनि ।
सिला सलिल ह्वै गई, सलिल ह्वै गयौ सिला पुनि ॥
पवन थक्यौ, ससि थक्यौ थक्यौ उडु-मंडल सगरौ ।
पाछैं रवि रथ थक्यौ, चल्यौ नहिं आगैं डगरौ ॥

रा० पं० अ० ५—४४, ४५।

इस रासलीला के अद्भुत रस का वर्णन कौन कर सकता है? अपने सहस्त्र मुखों से गाकर भी अब तक शेष पार न पा सके। अत्यन्त शान्त भाव से शंकर मन ही मन इसका ध्यान करते हैं तथा 'सनक' 'सनन्दन' 'नारद' एवं शारदा को भी यह

अच्छी लगती है। यद्यपि लक्ष्मी भगवान् के कमल चरणों की रात्रिदिन सेवा किया करती हैं, किन्तु उन्हें भी स्वप्न तक में इसका आनन्द नहीं मिला :—

यह अद्भुत रस राम कहत कछु कहि नहि आवै।
सेस सहस मुख गावै, अजहूँ पार न पावै ॥ ६७ ॥
सिव मनहीं मन ध्यावै, काहू नाहिं जनावै।
सनक, सनन्दन, नारद, सारद अति मन भावै ॥ ६८ ॥
यद्यपि हरि-पद-कमल, जु कमला, सेवति निस-दिन।
तद्यपि यह रस सपने, कबहूँ नहिं पायौ तिन ॥ ६९ ॥
—रा० पं० अ० ५

इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि नन्ददास जी की रासविषयक कल्पना कितनी व्यापक है। श्रीकृष्ण और गोपिकाओं का "रास-मंडल" उनके लिए केवल व्रजमंडल की ही 'वस्तु' नहीं है; बल्कि "अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्"—उनका "रास" स्वयं सच्चिदानन्द का स्वरूप बनकर चराचर को रस, आनन्द पहुँचाने के लिए उमड़ रहा है।

वेद, उपनिषद् और पुराणों तक में शब्दब्रह्म की महिमा का वर्णन किया गया है। पौर्वात्य दर्शन में शब्द को साक्षात् परब्रह्म ही माना गया है। हमारे यहां के साधारण मुरली गवैये भी "नादब्रह्म" की महिमा जानते हैं। आजकल पौर्वात्य दर्शनशास्त्र से पूर्णतया अनभिज्ञ और पश्चिमी विचारों का अन्ध अनुकरण करने वाले हिन्दी लेखक 'शब्द' की अपेक्षा 'अर्थ' को अधिक महत्व देने जा रहे हैं; परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय, तो 'शब्द' के बिना 'अर्थ' का बोध ही नहीं हो सकता—'अर्थ' तो 'शब्द' के पीछे २

अजहूँ नाहिन कछु बिगर्यौ रंचक पिय आवौ।
मुरली को जूठो अधरामृत आइ पियावौ॥
—रा० पं० अ० ३—१६

सारांश यह है कि नन्ददास जी ने मुरली के वर्णन में परब्रह्म का स्वरूप दिखलाकर निर्गुणभक्ति की ओर इशारा मात्र किया है। वास्तव में तो सगुण भक्ति की मूर्तिमान प्रतिमा गोपिकाओं के आधार से उन्होंने मुरली को माना है। कई भक्तों ने तो जिस प्रकार गोपिकाओं को कृष्ण का अधरामृत पान कराया है, उसी प्रकार मुरली के विषय में भी कहा है और इस तरह गोपिकाओं और मुरली में सौतिया डाह भी पैदा करा दिया है। मुरली की महिमा ही विचित्र है।

भाषा

नन्ददास जी ने अपनी रास-पंचाध्यायी तथा भँवर-गीत व्रजभाषा में लिखा है। यह शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। मध्य-काल में व्रजभाषा ही साहित्य की एक सामान्य भाषा थी, जिसका प्रयोग समस्त हिन्दी कवियों ने किया है। राजपूताने में यह भाषा 'पिङ्गल' नाम से प्रख्यात थी। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वीप्रान्त-निवासी कवियों ने भी साहित्य में इसका प्रयोग किया है। नन्ददास भी सम्भवतः पूरब के रहने वाले थे, अतएव आप की व्रजभाषा में अवधी, भोजपुरी इत्यादि प्रान्तीय भाषाओं के शब्द भी कहीं कहीं मिलते हैं—

जैसे 'है' की जगह अवधी का 'आहि' और 'होयगो' की जगह 'होइ' इत्यादि क्रियाओं का प्रयोग पाया जाता है। नन्ददास ने भोजपुरी के 'रावरे' सर्वनाम का भी प्रयोग भँवर-गीत में किया है। खड़ी बोली के 'आप' की तरह भोजपुरी मध्यम पुरुष, एकवचन में आदर-प्रदर्शन के लिए 'रउआँ' अथवा 'रउएँ' का प्रयोग होता है। अवधी तथा व्रजभाषा में

इस सर्वनाम का प्रयोग नहीं होता। सम्बन्धकारक में 'रउआँ' का रूप 'राउर' हो जाता है और इसी से नन्ददास ने इस रूप को ग्रहण किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कवितावली के 'रावरे दोष न पायन को' में इस शब्द का प्रयोग किया है।

नन्ददास की रचना में विदेशी शब्दों का प्रायः अभाव है। पंचाध्यायी में आपने अरबी के 'लायक' तथा 'ग़ार' शब्द के परिवर्तित रूप ''लाइक'' तथा 'गार' को ग्रहण किया है जो ध्वनि-परिवर्तन के नियम के सर्वथा अनुकूल है।

संस्कृत की कोमलकान्त पदावली का जितना सुन्दर प्रयोग नन्ददास ने अपने काव्य में किया है उतना सम्भवतः अन्य किसी भाषा कवि ने नहीं किया है। रास-पंचाध्यायी की भाषा पर तो श्रीमद्भागवत की भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसका एक मात्र कारण यही कहा जा सकता है कि आपको अपने गुरू से, तथा स्वतंत्र रूप से, अनेक बार भागवत पुराण को अध्ययन करने का अवसर मिला था। अवश्य आप को इसके बहुत से श्लोक कंठाग्र होंगे। इसी कारण से तत्सम शब्दों का ही आपकी रचना में बाहुल्य है। उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त आपने दो स्थानों पर 'वदति' तथा 'चुंवति' क्रियाओं को भी तत्सम रूप में ही रख दिया है। इसी प्रकार के प्रयोगों से कुछ विद्वान् नन्ददासजी की कविता को जयदेव कवि के 'गीतगोविन्द' का अनुयायी तक मानने लगे हैं।

अस्तु। नन्ददासजी की प्रासादिक कविता का माधुर्य और रस इत्यादि को देख कर ही सर्वसाधारण में यह जनश्रुति प्रचलित हो गई है कि—

''और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया।''

अर्थात् अन्य कवियों की रचना में जो सौष्ठव और स्वारस्य नहीं पाया जाता, वह नन्ददासजी की कविता में

मिलता है। छन्द की गति को ठीक रखने के लिए आप के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों ने शब्दों को खूब तोड़ा मरोड़ा है, जिसका एक परिणाम यह हुआ है कि भाषा में दुरूहता आ गई है। नन्ददास की भाषा में यह दोष नहीं है। आप के शब्दों के परिवर्तन ध्वनि-शास्त्र के नियमों के अनुकूल होने के कारण अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़े हैं। जैसे—लछमी (लक्ष्मी), अपछरा (अप्सरा), गन्धरव (गन्धर्व), स्रम (श्रम), अन्तरजामी (अन्तर्यामी), धरम (धर्म), जोवन (यौवन), मारग (मार्ग) आदि।

भाषा को टकसाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें प्रचलित शब्दों, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया जाय। नन्ददास जी ने भी 'रास-पंचाध्यायी' तथा 'भँवरगीत' में प्रचलित मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। पंचाध्यायी की अपेक्षा भँवरगीत में मुहावरों का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका भी एक कारण है। भँवरगीत वास्तव में एक उपालम्भ-काव्य-ग्रन्थ है और जब पारस्परिक वार्तालाप में उपालम्भ अथवा व्यङ्ग्यात्मक शैली का उपयोग किया जाता है तो मुहावरे स्वाभाविक ढंग से आ जाते हैं। नन्ददास जी ने जिन मुहावरों का उपयोग अपनी कविता में किया है उनमें से कुछ का प्रयोग प्रान्त विशेष में ही होता है। जैसे 'मनमूसना' (मन चुराना) में पूर्वी अवधी तथा भोजपुरी की स्पष्ट छाप है। आप के शेष मुहावरों का प्रयोग प्रायः सर्वत्र होता है—जैसे धूल ससेटना (खाक छानना), इन्द्रियों को मारना (इन्द्रियों को वश में करना), लोभ की नाव होना (अत्यन्त लोभी होना), बेकारी काटना (व्यर्थ समय खोना), पी का पद पाना (मोक्ष पाना) इत्यादि। आपकी लोकोक्तियों का प्रयोग तो प्रायः सार्वदेशिक है। जैसे 'घर आयो नाग न पूजिये

...ाँवी पूजन जाहिं', 'जल बिन कहो कैसे जियें, गहिरे जल की मीन' इत्यादि।

काव्यगुण

भाषा को रसानुकूल बनाने के लिए कवि को तीन गुणों का ध्यान रखना पड़ता है। वे हैं माधुर्य, ओज और प्रसाद। जिस गुण से चित्त द्रवीभूत हो कर आह्लादित हो, उसे माधुर्य कहते हैं। यह गुण संयोग-शृङ्गार से करुण में, करुण से वियोग-शृङ्गार में और वियोग-शृङ्गार से शांत रस में अधिकाधिक होता जाता है। जिस रचना में श्रुतिमधुर पद विशेष रूप से होते हैं, उसमें माधुर्यगुण विशेष माना जाता है। काव्य में विशेष कर टवर्ग श्रुति-कटु माना गया है। अतएव यह माधुर्यगुण का विघातक है। नीचे नन्ददास जी की कविता का माधुर्यगुण-युक्त एक उदाहरण दिया जाता है—

और शान्त। कुछ साहित्याचार्यों ने इन नव रसों के अतिरिक्त वात्सल्य और भक्ति आदि कुछ और भी रस माने हैं। किन्तु आचार्य मम्मट के अनुसार रसों की संख्या नव ही है और वात्सल्य और भक्ति को क्रमशः पुत्रादिविषयक रति-भाव में और भक्तिरस को देव विषयक रति-भाव के अन्तर्गत मानना चाहिए। अत्यन्त व्यापक होने के कारण आचार्यों ने शृङ्गार को 'रसराज' माना है। नन्ददास की रचना में प्रधान रूप से शृङ्गार तथा गौण रूप से करुण रस की अभिव्यञ्जना हुई है। शृङ्गाररस को भी संयोग-शृङ्गार तथा विप्रलम्भ-शृङ्गार, इन दो भागों में विभक्त किया जाता है। संयोग-शृङ्गार भी कहीं नायिकारब्ध तथा कहीं नायकारब्ध होता है। जहाँ नायिका के द्वारा उपक्रम होता है वहाँ नायिकारब्ध तथा जहाँ नायक के द्वारा उपक्रम होता है वहाँ नायकारब्ध संयोग-शृङ्गार होता है। नायकारब्ध संयोग-शृङ्गार का एक बहुत ही उत्तम उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

उज्जल मृदु वालुका पुलिन अति सरस-सुहाई।
जमुना जू निज कर तरंग करि आपु बनाई॥ १२२॥
बैठे तहँ सुन्दर सुजान सब सुख निधान हरि।
बिलसत विविध बिलास हास रस हिय हुलास भरि॥१२३॥
परिरंभन मुख चुम्बन कच कुच नीवी परसत।
सरसत प्रेम अनंग रंग नव घन ज्यौं बरसत॥ १२४॥
—रा० पं० अ० १

ऊपर के पद में रस के चारों अंग स्पष्ट परिलक्षित हैं। इसका स्थायीभाव रति है। कृष्ण तथा गोपिकायें आलम्बन विभाव, उज्वल-यमुनातट उद्दीपन; परिरंभन, मुखचुंबन आदि अनुभाव तथा सम्मिलन सुख से उत्पन्न हर्ष व्यभिचारी भाव:

पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडुमंडल सगरौ।
पाछैं रवि रथ थक्यौ, चल्यौ नहिं आगें डगरौ ॥ ४५ ॥
—रा० पं० अ० ५

प्रसादगुण की स्थिति सभी रसों और सारी रचनाओं में हो सकती है। वस्तुतः माधुर्य और ओजगुण का संबंध प्रायः शब्द के बाह्यरूप से होता है; किन्तु प्रसाद का सम्बन्ध उसके अर्थ से है। अतएव काव्य को जिस भाषाशैली से उसका अर्थ सहज हृदयङ्गम हो जाय, ऐसा सरल और सुबोध पद प्रसाद-गुण-युक्त होता है। नन्ददास की रचना में यह गुण विशेष रूप से विद्यमान है। उदाहरणार्थ कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

हरि गईं विरह विकल सब पूँछति द्रुम बेली बन।
को जड़, को चेतन्न न जानत कछु बिरही जन ॥ ५ ॥
हे मालति ! हे जाति जूथके ! सुनि हित दै चित।
मान-हरन मन-हरन लाल गिरधरन लखे इत ॥ ६ ॥
अहो असोक ! हर सोक, लोकमनि ! पियहि बतावहु।
अहो पनस ! सुभ-सरस मरति तिय अमिय पियावहु ॥१६॥
जमुना तट के बिटप पूँछि भईं निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि ! महा कठिन तीरथ के बासी ॥ १७ ॥
—रा० पं० अ० २

रास-पंचाध्यायी तथा भँवरगीत के काव्य-गुणों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है; अब यहाँ पर रसों का विवेचन

रस

किया जाता है। वास्तव में काव्य के उपर्युक्त तीनों गुण रस के धर्म हैं। काव्य में रस ही मुख्य एवं सर्वोपरि वस्तु है। यही कारण है कि आचार्यों ने इसे काव्य की आत्मा कहा है। रस नव हैं— शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत

इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत।
उत घनसार तुसार मिली मंदार झकोरत ॥ ११४ ॥
इत लवंग-नव-रंग एलची झेलि रही रस।
उत कुरवक, केवरी, केतकी गंध-वध-वस ॥ ११५ ॥

—रा० पं० अ० १

नैन चैन मन प्रान मैं मोहन गुन भरपूरि।
प्रेम पियूषें छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि ॥

—भँ० गी० १२

अर्थालंकार में नन्ददास जी ने उपमा, अनन्वय, रूपक तथा उत्प्रेक्षा का विशेष रूप से प्रयोग किया है। इनमें उत्प्रेक्षा का प्रयोग अत्यधिक परिमाण में हुआ है। अब इन अलंकारों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी तनिक समझ लेना चाहिए। उपमालंकार में उपमेय और उपमान की समता करके उपमेय का उत्कर्ष बढ़ाया जाता है, रूपक में अभेद आरोप करके। अनन्वय में तो उपमेय को ही उपमानता प्राप्त हो जाती है; किन्तु उत्प्रेक्षा में उपमेय को उपमान से भिन्न जानते हुए भी बलपूर्वक प्रधानता के साथ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है। अब क्रमशः इन के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) उपमा—

सुघर साँवरे पिय सँग, निरतति यौं ब्रज-बाला।

—रा० पं० अ० ५

(२) रूपक—

नव-मरकत-मनि स्याम, कनक-मनि-गन ब्रजबाला ॥ १० ॥

—रा० पं० अ० ५

कोउ कहै "रे मधुप ! साधु मधुबन के ऐसे।
और तहाँ के सिद्ध लोग है हैं धौं कैसे ?
अवगुन गुन गहि लेत हैं गुन को डारत मेटि।
मोहन निर्गुन को गहे तुम साधुन की भेंटि॥
गाँठि कौ खोय के ॥ ५८ ॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को मालूम हो जायगा कि कविवर नन्ददास की रचना कैसी सरस है और भिन्न भिन्न रसों का आविर्भाव आपने अपनी कविता मे किस प्रकार किया है।

वस्तु-वर्णन तथा काव्य के उत्कृष्टता-प्रदर्शन में गुण और अलंकार दोनों की आवश्यकता पड़ती है। रस तो, जैसा ऊपर कहा गया है, काव्य की आत्मा ही है। अब गुण अलंकार और अलंकार के अन्तर को भी स्पष्टरूप से जान लेना चाहिए। गुण वास्तव में रस के धर्म हैं; क्योंकि वे सदैव रस के साथ रहते हैं; किन्तु अलंकार रस का साथ छोड़कर नीरस काव्य में भी रहते हैं। इसके अतिरिक्त गुण सदैव रस का उपकार करते हैं; किन्तु अलंकार रस के साथ रहकर कभी उपकारक होते हैं और कभी अपकारक।

अलंकार के भी साधरणतया दो भेद हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। नन्ददास की कविता में दोनों प्रकार के अलंकार मिलते हैं। और शब्दालंकार में अनुप्रास मुख्य है। नीचे रास पंचाध्यायी से अनुप्रास के उदाहरण दिए जाते हैं:—

कृपा-रंग-रस-ऐन नैन राजत रतनारे।
कृपा-रसासव-पान अलस कछु घूम घुमारे ॥ ५ ॥
स्रवत-कृपा-रस भवन नंद-संपुट जनु दरसै।
प्रेमानंद निधि तासु मन्द-मुसक्यन-रस बरसै ॥ ६ ॥
—रा० पं० अ० १

नन्ददास जी ने अपने भँवरगीत को रचना जिस ढंग के छन्द में की है, उससे उनकी संगीतपटुता का वहुत अच्छा प्रमाण मिलता है। भँवरगीत की रचना आपने एक स्वतंत्र प्रकार के छन्द में की है। इसके प्रत्येक छन्द में प्रथम रोला के दो पद, फिर दोहे के दो पद और अन्त में दस मात्राओं की एक टेक रखी गई है। रोले और दोहे की संयोजना में नन्ददास जी का संगीत-वैदग्ध्य प्रकट होता है; क्योंकि रोला और दोहा, दोनों छन्दों में चौबीस मात्राएं होती हैं; और दोनों छन्दों की रचना यति के हिसाव से भी एक दूसरे से उलटी पड़ती है। इसलिए रोले की दो लाइनों बाद ही दो दोहे की लाइनें रख देने से भँवरगीत का छन्द वहुत ही भावोत्पादक और संगीतमय वन गया है। इसके साथ ही दस मात्रावाली अन्तिम टेक के मिलने से गोपियों और उद्धव के उत्तरप्रत्युत्तर की तरंगावली में संगीत की एक अपूर्व हिलोर पैदा हो रहा है।

"भँवरगीत" नाम से ही प्रकट होता है कि यह कविता "गीतिका" है; और नन्ददास जी ने इसको संगीत के ढंग पर ही छन्दों में वैठाया है। इसका सव से वड़ा प्रमाण भँवरगीत के प्रारम्भ की दो पंक्तियाँ हैं:—

ऊधो को उपदेस सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य सवै गुन आगरी॥

भँवरगीत के प्रत्येक 'गीत' की प्रथम दो लाइनें रोला छन्द की हैं। फिर भी नन्ददास जी ने इस गीतिकाव्य की सर्वप्रथम दो लाइनें, चौवीस मात्राओं के रोला में न रखकर, उपर्युक्त प्रकार से, इक्कोस मात्राओं की ही क्यों रखीं ? हमारे इस प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण पुस्तक की "सुनो ब्रजनागरी" इस टेक में मौजूद है। अर्थात् इस गीतिकाव्य के प्रारम्भ की दो लाइनें

(३) अनन्वय—

या घन की वर-चातक, या घनहीं घन आवै ॥ २९ ॥

—रा० पं० अ० १

(४) उत्प्रेक्षा—

गोरे तन की जोति छुटि छवि छाइ रही घर।
मानौं ठाढ़ी सुभग कुँवरि, कंचन अवनी पर॥
घन तें बिछुरि बीजुरी जनु मानिनि-तनु काछें।
किधौं चंद सौं रूसि, चन्द्रिका रहि गई पाछें॥ ४२॥

—रा० पं० अ० २

रास-पंचाध्यायी की रचना नन्ददास जी ने रोला छन्द में की है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्रायें होती हैं और यति ग्यारह और तेरह पर होती है। इस नियम के अनुसार पंचाध्यायी के कतिपय पदों में यतिभंग दोष आ जाता है; किन्तु नन्ददास जी की समस्त कविता पढ़ने से शायद यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि आपने छन्दों के अन्तर्गत यति और मात्राओं इत्यादि की गणना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। जैसे कि प्रायः गायक लोग किसी भी प्रकार के छन्द को खींचतान कर अपने संगीत के ताल-स्वर में बैठा लेते हैं वैसा ही नन्ददास जी के छन्दों में भी कई जगह पाया जाता है। अवश्य ही नन्ददास जी केशवदास की तरह छन्दशास्त्र और पिङ्गलशास्त्र के बहुत बड़े पंडित नहीं जान पड़ते; परन्तु उनकी रचना में छन्दों की गति, शब्दों के लालित्य और पदों की रचना में संगीत तो अवश्य पाया जाता है; और अष्टछाप के प्रायः सभी कवि संगीत के आचार्य माने जाते हैं। नन्ददास जी की समस्त रचना में भी उनकी संगीतप्रियता का पूर्ण परिचय मिलता है।

छन्द

नन्ददास जी ने अपने भँवरगीत को रचना जिस ढंग के छन्द में की है, उससे उनकी संगीतपटुता का बहुत अच्छा प्रमाण मिलता है। भँवरगीत की रचना आपने एक स्वतंत्र प्रकार के छन्द में की है। इसके प्रत्येक छन्द में प्रथम रोला के दो पद, फिर दोहे के दो पद और अन्त में दस मात्राओं की एक टेक रखी गई है। रोले और दोहे की संयोजना में नन्ददास जी का संगीत-वैदग्ध्य प्रकट होता है; क्योंकि रोला और दोहा, दोनों छन्दों में चौबीस मात्राएं होती हैं; और दोनों छन्दों की रचना यति के हिसाब से भी एक दूसरे से उलटी पड़ती है। इसलिए रोले की दो लाइनों बाद ही दो दोहे की लाइनें रख देने से भँवरगीत का छन्द बहुत ही भावोत्पादक और संगीतमय बन गया है। इसके साथ ही दस मात्रावाली अन्तिम टेक के मिलने से गोपियों और उद्धव के उत्तरप्रत्युत्तर की तरंगावली में संगीत की एक अपूर्व हिलोर पैदा हो रहा है।

"भँवरगीत" नाम से ही प्रकट होता है कि यह कविता "गीतिका" है; और नन्ददास जी ने इसको संगीत के ढंग पर ही छन्दों में बैठाया है। इसका सब से बड़ा प्रमाण भँवरगीत के प्रारम्भ की दो पंक्तियाँ हैं:— .

ऊधौ को उपदेश सुनो व्रजनागरी।

रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी॥

भँवरगीत के प्रत्येक 'गीत' की प्रथम दो लाइनें रोला छन्द की हैं। फिर भी नन्ददास जी ने इस गीतिकाव्य की सर्वप्रथम दो लाइनें, चौबीस मात्राओं के रोला में न रखकर, उपर्युक्त प्रकार से, इक्कीस मात्राओं की ही क्यों रखीं ? हमारे इस प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण पुस्तक की "सुनो व्रजनागरी" इस टेक में मौजूद है। अर्थात् इस गीतिकाव्य के प्रारम्भ की दो लाइनें

मानों सम्पूर्ण भँवरगीत के "अन्तरा" के रूप में रखी गई हैं। जैसे कोई भी पद गाते समय उसका अन्तरा बार-बार गाया जाता है, वैसे ही भँवरगीत को भी कवि ने गाने की चीज बना दिया है। सारांश यह है कि नन्ददास जी ने भँवरगीत की छन्दरचना में अत्यन्त कौशल से काम लिया है; और इससे इस काव्य का माधुर्य बहुत ही बढ़ गया है।

नन्ददास का प्रकृति-चित्रण

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने अपने अमर काव्य में प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्र उपस्थित किया है। कालि-दास की उपमायें श्रेष्ठ बतलायी गई हैं; किन्तु उनका प्रकृति-चित्रण भी कम सुन्दर नहीं। शकुन्तला में आश्रम का और कुमार-सम्भव के प्रारम्भ में हिमालय का जैसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। हिन्दी में प्राचीन कवियों का ध्यान प्रकृति-वर्णन की ओर बहुत कम रहा है। इसका कारण यह है कि हिन्दी कविता का प्रारम्भ उस समय हुआ जब हमारे देश में स्वाधीनता का अच्छा सा वायुमण्डल मौजूद नहीं था। कवि लोग विशेष कर राजाओं और बादशाहों के दरबार में आश्रित थे, और उनको प्रकृति-निरीक्षण के अवसर भी प्रायः कम ही मिलते थे। अधिकांश में अपने आश्रय-दाताओं तथा उनके दरबार के मनोरंजन अथवा कीर्ति वर्णन के लिए ही कवि लोग रचनाएं करते थे। ऐसी दशा में प्रकृति-चित्रण की ओर उनका ध्यान न जाना एक स्वाभाविक बात है। फिर भी कई अन्य कवियों ने प्रकृति-वर्णन अच्छा किया है। नन्ददास जी की कविता में भी प्रकृति-चित्रण दो रूपों में हुआ है—एक तो प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण, दूसरा उद्दीपन तथा अलं-कार रूप में प्रकृति का वर्णन। स्वतन्त्र-प्रकृति-चित्रण को ही हम वास्तविक प्रकृति-वर्णन कह सकते हैं। इस प्रकार के प्रकृति

वर्णन में 'विम्ब' ग्रहण करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य होता है। विम्ब-ग्रहण से तात्पर्य यह है कि कवि जिस दृश्य का चित्रण करे उसकी सजीव प्रतिमा पाठकों के सन्मुख आ जानी चाहिए। कुछ स्थलों पर नन्ददास ने प्रकृति का चित्रण इसी रूप में किया है। उदाहरण रूप में कतिपय पद नीचे दिए जाते हैं :—

तिहिं सुर-तरु-मधि और एक अद्भुत छवि छाजै।
साखा दल फल फूलन हरि-प्रतिविम्ब विराजै ॥ ३४ ॥
ता तरु कौमल कनक भूमि मनि-मै मोहत मन।
लखियतु सव प्रतिबिम्ब मनहुँ घर मैं दूजौ वन ॥ ३५ ॥
थलज जलज झलमलत, ललित वहु भँवर उड़ावै।
उड़ि उड़ि परत पराग, विमल छवि कहति न आवै ॥३६॥
जमुना जू अति प्रेम भरी तट वहति जु गहरी।
मनि-मंडित महि मांझि; दूरि लौं उपजति लहरी ॥३७॥
—रा० पं० अ० १

वाह्य-प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी कवि के निम्नलिखित पद भी सुन्दर हैं—

सुभ-सरिता के तीर धीर बलबीर गए तहँ।
कौमल मलै समीर, छबिन की महा भीर जहँ ॥११६॥
कुसुम-धूरि धूँधरी कुँज, छवि पुँजन छाई।
गुंजत मंजु मलिंद वैनु जनु बजति सुहाई ॥११७॥
इत महकति मालती, चारु चंपक चित चोरत।
उत घनसार तुसार मिली मंदार झकोरत ॥११८॥
इत लवंग-नव-रंग एलची झेलि रही रस।
उत कुरबक केवरौ, केतकी गंध-वंध-वस ॥११९॥

इत तुलसी छबि हुलसी छाँड़ति परिमल-पूटैं ।
उत कमोद-आमोद गोद भरि भरि सुख लूटैं ॥१२०॥
—रा० पं० अ० १

नन्ददास जी भक्तकाल में हुए, अतएव उद्दीपन तथा अलंकार रूप में आपने प्रकृति का जो चित्रण किया उसमें उतनी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई जितनी विहारी, देव तथा रीति-काल के अन्य कवियों में आई। भगवान कृष्ण के रास की इच्छा करते ही उद्दीपन रूप में जो चन्द्रोदय हुआ उसका मनोहर चित्र निम्नलिखित पदों में कवि ने खींचा है :—

ताही छिन उड़राज उदित, रस-रास सहायक ।
कुंकुम-मंडित प्रिया-वदन जनु नागर नायक ॥५१॥
कौमल किरन अरुन नभ वन मैं व्यापि रही यौं ।
मनसिज खेल्यौ फागु घुँमरि घुरि रह्यो गुलाल ज्यौं ॥५२॥
फटिक-छटा सी किरन कुंज-रन्ध्रन ह्वै आई ।
मानों वितन वितान, सुदेश तनाव तनाई ॥५३॥
—रा० पं० अ० १

अब अलंकार रूप में भी प्रकृति-वर्णन का एक उदाहरण नीचे उद्धृत किया जाता है :—

मुख-अरविंदन आगें, जल-अरविंद लगैं अस ।
भोर भऐं भवनन के दीपक मंद परत जस ॥५१॥
—रा० पं० अ० ५

नन्ददास जी की समस्त कविता देखने से जान पड़ता है कि हिन्दी के अन्य भक्त कवियों की भाँति नन्ददास जी ने भी अपने काव्य में प्रकृति वर्णन को कोई खास विशेपता नहीं दी

है। लेकिन वर्णन के प्रवाह में आपने प्रकृति-चित्रण का कोई अवसर भी हाथ से जाने नहीं दिया है।

कठोपनिषद् में कहा गया है कि जब मनुष्य के हृदय में रहने वाली सब कामनायें छूट जाती हैं, तब वह मुक्त

भक्ति हो जाता है। उस समय वह इसी संसार में रहते हुए ब्रह्मानन्द का उपभोग करता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिश्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते ॥

अब प्रश्न यह उठता है कि कामनाओं का बन्धन कैसे छूटे इसके लिए भी दो उपाय बतलाये गये हैं—ज्ञान और भक्ति। पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने से अविद्या तथा तज्जनित तृष्णादि का नाश हो जाता है। उग्र तपस्या के पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति पर भगवान् बुद्ध ने निम्नलिखित उदान (उल्लास-वाक्य) कहा था :—

अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥
गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसंखितं ॥
विसंखार गतं चित्तं, तण्हानं खय मज्झगा।

धम्मपद ११—८

अर्थात् मैं लगातार अनेक जन्मों तक (इस कायारूपी घर को बनाने वाले) गृहकार को ढूँढ़ता हुआ संसार में दौड़ता रहा। फिर फिर पैदा होना दुखदायी है। लेकिन हे गृहकार! अब तुझे मैंने देख लिया। अब तू फिर घर न बना सकेगा। तेरी सभी कड़ियाँ टूट गईं। गृह-कूट भी गिर पड़ा। चित्त संस्कार-रहित हो गया। तृष्णा जाती रही।

भगवान् बुद्ध की तरह कठिन तपस्या करनेवालों की संख्या इस संसार में अत्यल्प है, अतएव सर्वसाधारण के लिये भक्ति-मार्ग ही श्रेयस्कर बतलाया गया है। श्रीमद्भागवतकार के अनुसार सतयुग, त्रेता तथा द्वापर में मोक्ष-साधन के लिए ज्ञान तथा वैराग्य अपेक्षित हैं; किन्तु कलयुग में तो केवल भक्ति द्वारा ही सायुज्य मुक्ति मिल सकती है :—

सत्यादि त्रियुगे बोध वैराग्यौ मुक्तिसाधकौ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥४॥
श्री० भा० माहात्म्य अ० २

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में वासुदेव की भक्ति ही श्रेष्ठ मानी गई है। महर्षि गर्ग ने भी गालव को सम्बोधित करते हुए एक स्थान पर कहा है :—

हे गालव! परमात्मा-स्वरूप कृष्ण ही अंशराशियों की निधि हैं। यह ब्रह्माण्ड उनका एक अंश है। अपनी मौज के लिए खिलवाड़ करने वाले बालक की भाँति ईश्वर अपनी माया से सृष्टि का संघठन और विघटन किया करता है। यह माया वासुदेव की क्रीड़ा है। इसकी निवृत्ति कृष्ण के उपासनापुञ्ज से होती है।

आचार्य वल्लभ तथा उनके अनुयायी सूरदास एवं नन्ददास ने भी, इस भागवत-पंथ का अनुसरण करते हुए, कृष्णभक्ति ही को श्रेष्ठ माना है। इनके मत से भगवान् कृष्ण का सगुण रूप ही ग्राह्य है। प्रज्ञा-चक्षु सूरदास अपने भ्रमरगीत में कहते हैं :—

कौन काज या निगुन सों चिरजीवहु कान्ह हमारे।

इसी तरह नन्ददास जी ने भी भक्ति-पक्ष पर विशेष जोर

दिया है। उद्धव जब निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करके गोपियों को ज्ञान सिखाने लगे, तब गोपियाँ तर्क करती हैं :—

जौ उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तैं ?
बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहौ कहाँ तैं ?
वा गुन की परछाँह री माया-दर्पन-बीच।
गुन तैं गुन न्यारे भये अमल बारि मिलि कीच।
सखा सुनु स्याम के ॥२०॥
—भँ० गी०

आगे चल कर कृष्ण के गुणों को संस्मरण करती हुई गोपिकायें एक साथ ही अत्यन्त करुण स्वर में रो उठती हैं। उद्धव पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। उनकी ज्ञानगरिमा नष्ट हो जाती है और वे गोपियों के प्रेम प्रवाह में बहकर उनके भक्तिपक्ष के कायल हो जाते हैं :—

प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी।
दुविधा ग्यान गिलानि मंदता सिगरी नासी॥
कहत मोहिं बिस्मय भयो हरि के ये निज पात्र।
हौं तो कृतकृत ह्वै गयो इनके दरसन मात्र॥
मेटि मल ग्यान को॥
भँ० गी० ॥६२॥

गोपिकाओं की निष्काम भक्ति और अपने इष्टदेव के प्रति विशुद्ध प्रेम देखकर उद्धव का ज्ञान-गर्व गलित होता है और गोपिकाओं को ही वे भगवान् का अत्यन्त प्रियपात्र समझने लगते हैं। इतना ही नहीं; बल्कि उन भक्त गोपिकाओं के दर्शन मात्र से अपने को कृतकृत्य समझते हैं।

भक्तकवि नन्ददास का उद्देश्य यही था। गीता में भगवान् ने भक्त चार प्रकार के बतलाये हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और

ज्ञानी। निस्सन्देह ज्ञानी भक्त भगवान् को सब से अधिक प्रिय है; परन्तु ज्ञान का मार्ग कृपाण की धार के सदृश तीक्ष्ण है; और सर्वसाधारण जनता के लिए यह सुकर और सुलभ भी नहीं है। ज्ञान के मार्ग में अनेक खतरे हैं। इसलिए चारों प्रकार के भक्तों में ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से उनकी श्रेष्ठता का कोई अर्थ नहीं। अर्थात् निर्गुण की उपासना श्रेष्ठ होने पर भी सगुण की तरह सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं। अतएव हमारे भक्त कवियों ने भागवतधर्म के अनुसार, सगुण भक्ति की ही, जनता के हित की दृष्टि से, स्थापना की है। सगुण भक्ति के लिए जप, तप, अथवा हठयोग के समान दुष्कर साधनों की आवश्यकता नहीं। किसी भी एक चीज़ को निर्गुण परब्रह्म का प्रतीक मान लीजिए। उसके लिए आत्मसमर्पण करना ही सगुण भक्ति का लक्षण है।

नन्ददास जी ने भी गोपियों को आगे करके अपनी रास-पंचाध्यायी और भँवरगीत में सगुण भक्ति का ही उच्च आदर्श जनता के सम्मुख रखा है। स्त्री हो, वैश्य हो, शूद्र हो—कोई भी जाति हो, किसी पेशा का आदमी हो, सगुण भक्ति के द्वारा वह सहज ही परमगति को प्राप्त कर सकता है। गोपियों की तरह स्त्रियों में साधारण तौर पर कहाँ वह बुद्धि और शक्ति होती है कि वे जप, तप और हठयोग के समान साधनों के द्वारा निर्गुण ब्रह्म को समझने का प्रयत्न करें; परन्तु हाँ, भगवान् कृष्ण के सगुण और रमणीय स्वरूप को प्रतीक मान कर, सांसारिक कर्तव्य करते हुए भी, वे एकान्तिक प्रेम के द्वारा परब्रह्म का आनन्दानुभव कर सकती हैं। यही बात भगवान् कृष्ण गीता में स्वयं कहते हैं—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥७ ॥

अर्थात् अव्यक्त निर्गुण में चित्त लगाने वाले को बड़ी तकलीफ होती है; क्योंकि निर्गुण ब्रह्म बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। इसलिए मुझपर एकान्तिक प्रेम रखते हुए जो लोग अपने सारे सांसारिक कर्मों को, मेरे ही लिए करते हुए, मुझको ही समर्पित करते हैं,—इस प्रकार जो मुझ में अनन्य होकर, मेरा होकर मेरा ही ध्यान करते हुए, मेरी ही भक्ति में लवलीन रहते हैं,—एकमात्र मुझ में ही चित्त को लगाये रखते हैं, उनको मैं अनायास मृत्यु-संसार सागर से पार करके परमपद प्राप्त कराता हूँ। यही गोपियों की सुलभ भक्ति थी, जिसको नन्ददास जी ने अपनी अनुपम प्रतिभा और कवित्वशक्ति के द्वारा सर्वसाधारण जनता के सन्मुख रखा है।

॥ श्रीः ॥

महा-कवि नंददासजी प्रणीत

रास-पंचाध्यायी

—:०:—

[१]

बन्दन करौं कृपा-निधान, श्री सुक सुभकारी।
सुद्ध[1]-जोति-मै-रूप, सदाँ-सुन्दर अविकारी॥

[२]

हरिल्लीला-रस-मत्त मुदित नित बिचरति जग मैं।
अदभुत-गति कतहूँ न अटक ह्वै निसरति मग[2] मैं॥

[३]

नीलोत्पल-दल स्याम-अंग, नव-जोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुख-कमल मनौं अलि-अवलि बिराजै।

[४]

सुन्दर[3]-भाल विसाल, दिपति मनौं निकर निसाकर
कृष्ण-भक्ति[4]-प्रतिबन्ध तिमिर कौं, कोटि-दिवाकर॥

पाठान्तर—

(च) १—परम-ज्योतिमय-रूप। (च) २—नग में।
(क) ३—ललित सुभाल बिसाल। (क) ४—प्रतिबिम्ब।

[५]

कृपा-रंग-रस-ऐंन, नैंन राजत रतनारे।
कृष्ण१-रसासव-पान, अलस२ कछु घूँम-घुँमारे॥

[६]

स्रवन३ कृष्ण रस भरन गंड मंडल भल दरसै।
प्रेमानँद मिलि तासु, मन्द-मुसिकन-मधु-बरसै॥

[७]

उन्नत-नासा, अधर-बिम्ब, सुक की छबि छींनी।
तिन४ मधि अदभुत-भाँति लसति कछु इक मसि भींनी॥

[८]

कंबु-कंठ की रेख देख, हरि-धरम प्रकासै।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, जिहिँ निरखति नासै॥

[९]

उर वर पै५ अति-छबि की भीर, कछु बरनि न जाई।+
जिहिँ भीतर जगमगत निरन्तर कुँवर-कन्हाई॥

पाठान्तर—
(ग) १—कृष्ण-रसामृत। (रा०) २—करत।
(रा०) ३—स्रवन कृष्ण रस-भवन गंड-मंडल भल दरसै।
प्रेमानन्द-मलिन्द-मन्द मुसकनि मधु बरसै॥
(च) ४—तिनबिच अद्भुत-भाँति लसै जु कछुक मसि भींनी
(रा०) ,, तिनमहँ अद्भुत-भाँति जु कछुक लसति मसि भींनी
(ट) ५—पर।
+ उक्त पद में "अति छबि की" "की" को ह्रस्व रूप से पढ़ना चाहिये, जिससे छंद में एक मात्रा न बढ़े और "यतिभंग दोष" भी न हो। नंददासजी ने प्रायः (अन्यत्र भी) ऐसा ही व्यवहार किया है।

[१०]

सुन्दर-उदर उदार, रुमावलि राजति भारी।
हिअ[१]-सरवर-रस-पूरि, चली जनु उँमगि पनारी ॥

[११]

ता[२]-रस की कुंडिका-नाभि, सोभित अस गहरी।
त्रिवली ता मैं ललित-भाँति जनु उपजति लहरी ॥❀

[१२]

अति[३]-सुदेस कटि-देस सिंह सोभित सघनन अस
जुव[४]-जन-मन आकरषत, बरषत प्रेम-सुधा रस ॥†

[१३]

गूढ़-जानु, आजानु-बाहु, मद-गज-गति लोलैं।
गंगादिकन पवित्र करत[५] अवनी पैं डोलैं ॥

[१४]

सुन्दर पद-अरविन्द मधुर-मकरंद मुक्त जहँ।
मुनि-मन-मधुकर-निकर सदाँ-सेबित लोभी तहँ ॥‡

पाठान्तर—

(त) १—हीयौ-सरोवर रस-भर्यौ चल्यौ मधु उँमग पनारी।

(रा०) २—जिहिं रसकी कुँडिका-नाभि सोभित अस-गहरी।

❀ उक्त छंद भारतेन्दु जी की प्रति-"भा० चन्द्रिका" मैं नहीं हैं।

(ग) ३—कटि-प्रदेस सुन्दर सुदेस जंघन सोभित अस।

(रा०) ,,—अति सुदेस कटि देस सिंह सुन्दर सोभित अस।

(च) ४—जोवन मन आकरषत...।

,,—जुवतिन-मन आकरसत वरसत प्रेम-सुधारस ॥

†, उक्त पद (ट) प्रति में, और चन्द्रिका में नहीं हैं।

(क) ५—करन।

[१५]

जब दिन-मनि श्री कृष्ण, दृगन तैं दूरि भए दुरि।
पसरि पर्‌यो अँधियारि, सकल संसार घुँमड़ि-घुरि॥

[१६]

तिमिर-ग्रसित सब-लोक-ओक दुखि देखि[१] दयाकर।
प्रगट कियौ अदभुत प्रभाव, भागवत[२] जु बिभाकर*

[१७]

जे सँसार अँधियार[३]-गार मैं मगन भए परि।
तिन-हित अदभुत-दीप प्रकट कीनौं जु कृपाकरि॥

[१८]

श्रीभागवत सुभ[४] नाम, परम-अभिराम अमित-गति[५]
निगम-सार, सुक[६]-सार, विना-गुरु-कृपा अगम अति

[१९]

ताहू[७] मैं पुनि अति-रहस्य यह पंचध्याई।
तन मैं जैसें पंच-प्रान, अस सुक मुनि गाई॥

पाठान्तर—

(रा०) १—लखि दुखित दयाकर।
(प) ,,—विकल जब देखि दयाकर।
(द) २—श्रीमान ।
* उक्त पद (ग) प्रति में और "भा० चन्द्रिका" में नहीं हैं।
(ट) ३—असार अगर मैं...।
† उक्त पद "भा० चन्द्रिका" में नहीं हैं।
(क) ४—सो नाम...।
(क) ५—परम रति।
(च) ५—प्रेम-मति।
(प) ६—निरधार...।
(अ) ७—ताही मैं मनि अति...।

[२०]

परम-रसिक इक मित्र, मोहि तिन आग्या दीनी ।
ताही[१] तैं यह कथा, जथा-मति भाषा कीनी ॥

श्रीवृन्दावन-वर्णन

[२१]

अब[२] सुन्दर श्री वृन्दावन कौं गाइ सुनाऊँ ।
सकल[३]-सिद्धि-दाइक, नाइक, सबही बिधि पाऊँ ॥❀

[२२]

श्रीवृन्दावन चिदघन, कछु छबि बरनि न जाई ।
कृष्ण ललित-लीला के काज धरि रह्यौ जड़ताई ॥†

[२३]

जहँ[४] नग, खग, मृग, लता, कुंज विरुध तन जेते ।
परत न काल-प्रभाव, सदाँ सोभित हैं तेते ॥

पाठान्तर—

(ग) १—आपुन विरद पिछान जान निज करुना कीनी ।
(च) ,,—तातै मैं यह कथा,जथा मति भापा कीनी ।
(च) २—अति-सुन्दर अब वृन्दावन कौं...।
(ट) ,,—अब सुन्दर श्री वृन्दावन-गुन गाइ सुनाऊँ ।
(त) ,,—अब सुन्दर श्री वृन्दावन—कछु गाइ सुनाऊँ ।
(प) ३—परम-प्रीति, रस-रीति, प्रेम परिपूरन पाऊँ ।
(ट) ,,—सब विधि सुधि पाऊँ ।

❀ उक्त पद (क) प्रति में नहीं है ।
† यह पद (ग) (म) (च) प्रतियो मे नहीं है ।

(च) ४—पुनि तहँ खग मृग ।
(रा०) ,,—जहँ मृग, खग, नग कुंज...।
,, ,,—नहिं न काल गुन प्रभा सदाँ सोभित रहैं तेते ।

[२४]

सकल जन्तु अविरुद्धि जहाँ हरि मृग सँग चरहीं ।
काम, क्रोध, मद, लोभ-रहित लीला अनुसरहीं ॥

[२५]

सब[१] ऋतु संत बसंत, रहति जहँ दिन-मनि सोभा ।
आँन[२] बनन जाकी विभूति करि सोभित-सोभा ॥

[२६]

जो[३] लछमी निज रूप-अनूप[४] चरन सेवति नित ।
भ्रू[५] विलसतिजु विभूति जगत जगमगरहि जित-तित

[२७]

श्री अनन्त, महिमा-अनन्त, को बरनि सकै कवि ।
संकरसन सौं कछुक कही श्रीमुख[६] जाकी छवि ॥

[२८]

देवन[७] मैं श्री रमा-रमन नाराइन प्रभु जस ।
कानन[८] मैं श्री वृन्दावन, सब-दिन सोभित अस ॥

पाठान्तर—

(प) १—सब दिन रहित बसंत कृष्ण-अवलोकनि लोभा ।
(रा०) ,,—सब दिन रहत बसंत लसै तहँ दिन-दिन लोभा
(क) २—त्रिभुवन कानन जा विभूति...।
(ख) ,,—आनन्द लता विभूति काल सोभित जहँ सोभा ।
(रा०) सब कानन जाको...। (ट) ३—ज्यौं...।
(ट) ४—रहति...। (च) ५—भू...। (च) ६—सुन्दर जाकी
(रा०) ७—*देवन मैं श्री रमा-रमन नाराइन जैसैं ।
कानन मैं श्री वृन्दावन सोभित है ऐसैं ॥
(क) ८—बनन माँहि वृन्दावन सुदेस...।

[२९]

या बन की बर[1]-बानक, या बन-हीं-बन आवै ।
सेस, महेस, सुरेस, गनेसहु, पार न पावै ॥

[३०]

जहँ जेतिक द्रुम-जाति, कलपद्रुम सम सब लाइक
चिन्तामनि सी[2] भूमि, सबै चिन्तति फल-दाइक ॥

[३१]

तिन-मधि इक जु कलपतरु[3] लगि रही, जगमग-जोती
पत्र, मूल, फल, फूल, सकल, हीरा, मनि[4] मोती ॥

[३२]

तिन-मधि तिनके गन्ध[5] लुब्ध, अस[6] गान करत अलि
बरु किन्नर, गन्धरब, अपछरा, तिन पँ गईं बलि ॥

[३३]

अमृत-फुही, सुख-गुही, सुही, ज्यौं परति रहति नित
रास-रसिक सुन्दर-पिय के[7] स्रम दूरि करन हित ॥

पाठान्तर—

(प) १—बनि... ।
(प) २—मै... ।
(क) ,,—सम, सकल भूमि चिन्तति फल दाइक ।
(ट) ३—कल्पवृच्छ बर जगमग-जोती ।
,, ४—पात मूल फल... ।
(प) ५—तिन मौंतिन के गन्ध... ।
(च) ६—अति... ।
(च) ७—कौ... ।

[३४]

तिहिं[१] सुर-तरु मधि औरु[२] एक अदभुत छबि छाजै।
साखा, दल, फल, फूलन[३], हरि-प्रतिबिम्ब बिराजै॥

[३५]

ता तरु कोमल-कनक-भूमि-मनि[४]-मै मोहत मन।
लखियतु[५] सब प्रतिबिम्ब, मनहुँ घर मैं दूजौ[६] बन॥

[३६]

थलज[७] जलज झलमलत, ललित बहु भँवर उड़ावै।
उड़ि-उड़ि परत पराग, बिमल-छबि कहति न आवै॥

[३७]

जमुना जू अति-प्रेम-भरी, तट बहति जु गहरी।
मनि[८]-मंडित महि माँझि, दूर लौं उपजति[९] लहरी॥

पाठान्तर—

(ट) १—ता...।
,,—वा...।
,, २—अवर...।
(च) ३—फूल कृष्ण प्रति...।
(प) ४—सब कों सोहत मन।
(प) ५—दिखियतु..।
६—दूसर...।
(क) ७—थल जल झलकत झलमलात अति भँवर उड़ावैं।
(च) ८—मनि मंदिर दोऊ तीर उटैं, छवि अति भरि लहरी
(रा०) ९—मनि-मंडित महि माँहि. दौरि जनु उपजत लहरी।
(प) ,,—अद्भुत-लहरी।

[३८]

तहँ इक मनि-मै-सिंह-पीठि[१] सोभित सुन्दर-अति।
ता पै षोड़स-दल-सरोज अदभुत चक्राकृति ॥

[३९]

मधि, कमनीय करनिका,[२] सब सुख-सुन्दर[३] कन्दर।
तहँ खेलनि ब्रजराज-कुँवर-वर[४] रसिक-पुरन्दर ॥

श्रीकृष्ण-स्वरूप वर्णन

[४०]

निकर विभाकर दुति[५] मैंटति सुभ-कौस्तुभ-मनि अस।
सुन्दर[६] नंद-कुँवर-उर पैं सोई लागत उड़ जस ॥

[४१]

मोँहन अदभुत-रूप कहि न आवै छबि ताकी।
अखिल-अंड-व्यापी जु ब्रह्म, आभा कछु जाकी ॥

पाठान्तर—

(प) १—इक-विंसति कौंसक सुभग-अति।
(क) ,,—अंक-चित्र कौ संख सुभग-अति।
(ट) २—मधु...।
(,,) ३—कन्दर-सुन्दर।
(ट) ४—राजमति...।
(प) ५—निकर विभाकर-द्युति मैंटति, सुभ-मनि-कौसुभ अस।
(च) ६—हरि जू कौ उर निविड़, रुचिर सौ लागत उड़ जस ॥

चन्द्रोदय-वर्णन

[५१]

ताही[१] छिन उड़राज उदित, रस-रास-सहाइक।
कुंकुम[२]-मंडित प्रिया-बदन, जनु नागर-नाइक॥

[५२]

कोमल[३]-किरन-अरुन नभ बन[४] मैं व्यापि रही यौं।
मनसिज खेल्यौ फागु, घुमरि घुरि रह्यौ गुलाल ज्यौं[५]

[५३]

फटिक-छटा[६] सी किरन कुंज-रन्ध्रन ह्वै आई।
मानौं बितन बितान, सुदेस तनाव तनाई॥

[५४]

मन्द-मन्द चलि चारु[७] चन्द्रमा, अस[८] छबि छाई।
उझकत है जनु रमा-रमन-पिय, कौतुक पाई॥

पाठान्तर—

(च) १--ताही समैं उड़िराज उदित रसराज सहायक।
(रा०) ,,--रितुराज...।
(प) २--कुम कुम... ... ...मनु नागर-नायक।
(क) ३--कोमल-किरन अरुनिमा, वन घन व्याप रही यौं।
(ट) ४--घन मैं व्याप...।
(ख) ,,--अरुन मानों बन व्याप।
(फ) ,,--अरुन वा बर मैं व्याप।
(रा०) ,--अस। (रा०) ५--जस।
(अ) ६--स्फटिक छबी सी किरन-कुञ्ज-रन्ध्रन जब आई।
(क) ७--चालत, चन्द्रमा यौं छबि पाई। (छ) ८--अति...

मुरली-महिमा

[५५]

तब[1] लीनीं कर-कमल, जोगमाया सी मुरली ।
अघटित-घटना चतुर, बहुरि अधरन[2]-रस-जुरली ॥

[५६]

जाकी धुनि तैं अगम, निगम, प्रगटे बड़-नागर ।
नाँद-ब्रह्म की जननि मोहनी सब-सुख-सागर ॥

[५७]

पुनि मौंहन सौं मिली, कछुक कल-गान कियौ अस[3] ।
बाम-बिलोचन बाल[4]-तियन-मन-हरन होइ जस ॥

[५८]

मौंहन-मुरली-नाँद, स्रवन[5] कीनौं सब किनहूं ।
जथा[6]-जथा बिधि-रूप, तथा बिधि परस्यौ तिनहूँ ॥

[५९]

तरनि किरन[7] ज्यौं मनि, पखान, सबहिन कौं परसै ।
सूरजकान्ति-मनि बिना, कहूँ नहिं पावक दरसै ॥

पाठान्तर—

(प) १—जब लीनीं...। (ट) २—अधरामृत-जुरली ।
(च) २—अधरन सौं जुरली । (ज) २—अधरसन जुरली ।
(रा०) ३—नागर नवल-किसोर कान्ह, कल-गान कियौ अस
(क, ४—बालन कौ-मन-हरन...।
(रा०) ५—कियौ सु सुन्यौं सब किनहीं ।
(क) ,,—अमृत-धुनि सुनि सब किनहीं ।
(च) ६—जथा सुखद सुख-रूप, तथा-विधि परस्यौ तिनहीं ।
(क) ७—तरनि-किरन जस मनि पखान, सबही सौं परसै ।

[६०]

सुनति चलीं ब्रज-बधू, गीत-धुनि कौ मारग गहिँ ।
भवन-भीति द्रुम-कुंज-पुंज, कितहूँ अटकीं नहिँ ॥

[६१]

नाँद[1]-ब्रह्म कौ पथ रँगीलौ, सूच्छम-भारी ।
तिहि[2] मग ब्रज-तिय चलीं, आँन कोऊ नहिं अधिकारी ॥

[६२]

सुद्ध-प्रेम-मय रूप, पंच[3]-भूतन तैं न्यारी ।
तिन्हैं कहा कोऊ कहै, जोति[4] सी जग उजियारी ॥

[६३]

जे[5] रुकि गईं घर अति-अधीर, गुनमय सरीर बस ।
पुन्न,[6] पाप, प्रारब्ध सच्यौ, तन पच्यौ नाहिं रस ॥

[६४]

परम-दुसह-श्रीकृष्ण-बिरह-दुख व्यापौ तन[7] मैं ।
कोटि-बरस लौं नरक-भोग-अघ, भुगते छन[8] मैं ॥

पाठान्त—

(ल) १—नाँद-अमृत...।
(रा०) ,,—राग-अमृत...।
(च) २—तिहि व्रज-तिय भल चलीं...।
(त) ३—सुद्ध-जोति-मै-रूप, पंच-भौतिक तैं न्यारी ।
(च) ४—जोति सी जगत उजारी ।
(गा०) ५—जे रहि गईं घर अति अधीर...।
(ल) ६—पाप पुन्न प्रारब्ध रच्यौ तन, नाहिं पच्यौ रस ।
(क) ७—जिन मैं । (ग) ७—तिन मैं । (प) ८—छिन मैं.।

[६५]

पुनि[१] रंचक धरि ध्यान, पीय[२] परिरंभ दियो जब।
कोटि-सरग-सुख-भोग, छिनक[३] मंगल भुगते सब ॥

[६६]

लोह[४]-पात्र पाषान-परसि कंचन ह्वै सोहै।
नंद[५]-सुवन कौं परसि प्रेम, यह अचरज को है ॥

[६७]

ते[६] पुनि तिहिं मग चलीं, रँगीली तजि गृह-संगम।
जनु[७] पिंजरन तैं छुटे, घुटे नव-प्रेम विहंगम ॥

[६८]

कोउ तरुनी गुनमै[८] सरीर, तिन संग चली झुकि।
मात, पिता, पति, बन्धु, रहे झुकि, झुकि न रहीं रुकि†

पाठान्तर—

(रा०) १—जिय पिय कौ धरि ध्यान तनकि आलिंगन किय जब

(क) २—पिया...।

(प) ३—छीन कीने मंगल-सब।

(रा०) ४—इतर-धातु पॉहनहिं परसि कंचन ह्वै सोहै।

(प) ,, धातु-पात्र...।

(,,) ५—नंद सुवन सौं परम-प्रेम यह अचरज को है।

(ढ) ६—तेउ पुनि तिहि...।

(,,) ७—जनु पिंजरन तैं उड़े छुड़े जब प्रेम-विहंगम।

(क) ८—गुनमय सरीर हीं सहित चली टुकि।

† उक्त पद्य (ट) प्रति में नहीं है।

[६९]

सावन-सरिता रुकै[1] कहूँ करौ कोटि-जतन-अति[2] ।
कृष्ण-हरे[3] जिनके मन ते क्यौं रुकैं अगम-गति ॥

[७०]

चलति[4] अधिक छवि फबति, स्रवन मनि कुंडल झलकैं
संकित लोचन चपल चारु, नव-बिलुलित-अलकैं ॥

[७१]

जदपि[5] कहूं-के कहूं नियन[6] आभरन बनाए ।
हरि पिय पै अनुसरत, जहाँ के तहँ चलि आए ॥❀

[७२]

कहुँ लखियतु कहुँ नाहिं, सखीं बन बीच बनीं यौं ।
बिजुरिन कीसी छटा, सघन-बन माँझ चली जौं ॥❀

पाठान्तर—

(ट) १—नाहिं रुकै करो कोटि...।
(थ) ,,—नाहिं रुकै करें कोटि...।
(रा०) २—स्रावन-सरिता न रुकहिं करें जो जतन कोउ अति
(क) ३—गहे...।
(रा०) ४—चलति अधिक-छवि फबी स्रवन मैं कुंडल झलकैं
संकित-लोचन-चपल ललित-छवि बिलुचित अलकैं ।
(क) ५—जदपि नियन आभरन कहूँ के कहूँ बनाए ।
(ट) ६—बधून...।

❀ उक्त दोनों पद्य (क) प्रति में नहीं हैं ।

[७३]

कुंजन-कंजन निसरत वर-आनन सोभित अस ।
तम-कौंने तैं निकर लसत राका-मयंक जस ॥

[७४]

आइ उमग सौं मिलीं रँगीली-गोप-बधू यौं[1] ।
नंद[2]-सुवन-नागर-सागरसौं, प्रैम-नदी ज्यौं ॥

परीक्षित-प्रश्न

[७५]

परम-भागवत-रतन रसिक जु परीच्छित-राजा ।
प्रस्न कर्यौ रस-पुष्टि करन निज-सुख के काजा ॥

[७६]

[3]श्रीभागवत कौ पात्र जानि जग कौ हितकारी ।
उदर-दरी मैं करी कान्ह जाकी रखवारी ॥

[७७]

जाकौं सुन्दर-स्याम-कथा छिन-छिन नई[4] लागै ।
ज्यौं लंपट पर-जुवति-बात सुनि-सुनि[5] अनुरागै ॥

पाठान्तर—

(ट) १—अस ।

(प) २—नंद-सुवन सुन्दर-सागर सौं प्रैम-नदी जस ।

(रा०) ,,—नंद-सुवन-सागर सुन्दर सौं प्रेम-नदी जस ।

(क) ३—परम-धरम को पात्र जानि...।

(क) ४—प्रिय...।   (क) ५—अति...।

[७८]

[1]अहो मुनि! क्यौं गुनमय सरीर परिहरि पाए हरि।
[2]जानि भजे कमनीय-कान्ह, नहिँ ब्रह्म-भाव करि॥

उत्तर

[७९]

तबै[3] कही सुकदेव देव यह अचरज नाहीं।
सरव-भाव-भगवान-कान्ह जिनके[4] उर माहीं॥

[८०]

परम-दुष्ट-सिसुपाल बालपन तैं निंदक-अति।
जोगिन कौं जो दुरलभ सुरलभ[5] सो पाई गति॥

[८१]

हरि[6]-रस ओपीं-गोपीं सबहि तियन तैं न्यारी।
[7]कमल-नैन गोविन्द-चन्द की प्रानन-प्यारी॥

पाठान्तर—

(,,) १—हे मुनि, क्यौं गुनमय सरीर सौं पाए हैं हरि।
(प) २—जो न भजे कमनीय-कान्त अति-ब्रह्म-भाव करि॥
(क) ३—तब कहि श्री सुकदेव-देव अचरज यह नाहीं।
(क) ४—कृष्ण जिनके मन माहीं।
(च) ५—सुलभहि सो पाइ गति...।
(च) ६—व हरि-रस ओपी गोपी सब तियन तैं न्यारी।
(प) ७—कमल-नयन गोविंद-चंद जू की प्रान-पियारी।

कृष्ण-दर्शन

[८२]

तिनके[1] नूपुर-नाँद सुने, जब परम-सुहाए।
तब हरि के मन, नैंन, सिमटि सब स्रवनन आए ॥

[८३]

रुनुक-झुनुक पुनि[2] भली-भाँति सौं प्रगट भईं जब।
पिय के अँग-अँग सिमटि मिले[3] हैं रसिक नैंन तब।

[८४]

सब के मुख अवलोकति, पिय के नैंन बने यौं।
सुचि[4]-सुन्दर-ससि माँझि अरबरैं द्वै चकोर ज्यौं ॥

[८५]

[5]अति-आदर करि लईं, भईं, चहुँ-दिसि ठाढ़ी अनु।
छटा[7]-छबीली छेकि रही मृदु-घन-मूरति जनु ॥

पाठान्तर—

(क) १—जिनके नुपूर-नाँद सुने अति-परम-सुहाए।
(अ) २—झनक मनक पुनि भाँति-छबीली जब प्रगट भईं सब
(,,) ३—छबीले-नैंन मिले तब।
(प) ४—बहुत सरद-ससि...।
(,,) ५—अति-आदर करि लईं भईं पिय पैं ठाढ़ी अनु।
(,,) ६—छटन-छबीली मिलि छेकी मंजुल-मूरति जनु।
(ट) ,,—छबिली-छटान मिलि छेक्यौ मंजुल-घन-मूरति जनु

[८६]

नागर[1] वर नँद-नंद चंद, हँसि-मंद-मंद तब।
बोले बाँके-बैंन, प्रैम के परम ऐंन-सब ॥

[८७]

उज्वल-रस कौ यह सुभाव, बाँकी-छबि पावै।
बंक-चहनि, बरु बंक-कहनि, अति-रसहि बढ़ावै ॥

[८८]

ए सब नव नवल-किसोरी, भोरी[2], भरीं नेह-रस।
तातैं समझि न परीं, करीं पिय परम-प्रैम बस ॥

[८९]

जैसें नाइक गुन सरूप, अति-रसिक-महा है।
सब गुन मिथ्या हौंइ, नैंकु जो बंक न चाहै ॥

[९०]

त्यौं[3] कहि कैउक बचन नरम, कैउक रस-बस कर।
कहे[4] कैउक तिय-धरम, भरम-भेदक सुन्दर-वर ।

पाठान्तर—

(प) १—नागर, नगधर, नंद-चंद...।
(क) ,,—तब नागर-गुरु-नंद चंद, हँसि मंद-मंद जब।
(प) २—ए सब नवल-किसोरी, गोरी भरीं-प्रेम-रस।
(,,) ३—ज्यौं सुन्दर नाइक सुख-दाइक रसिक-महा है।
(च) ४—कैउक-बचन कहि नरम, कहे कैऊ रस-बर कर।
(य) ,,—कैक बचन कहे नरम, कैक रसबर कर्मनि पर।
(प) ५—कैउक कहि तिय-धरम।
(च) ,,—एक कहे तिय-धरम,परम-भेदक सुन्दर-वर।

गोपी-दशा-वर्णन

[९१]

लाल[१]-रसालहि बंक-बचन सुनि, थकित भईं यौं।
बाल[२]-मृगिनि की पाँति, सघन-बन भूलि परी त्यौं॥

[९२]

मँद परस्पर हँसीं, लसीं, तिरछी[३]-अँखियनि अस।
रूप-उदधि इतरात, रँगीली-मीन-पाँति जस॥

[९३]

जबै कह्यौ पिय जाउ, अधिक चित चिंता बाढ़ी।
पुतरिनि की सी पाँति रहि गईं इक-टक ठाढ़ी॥

[९४]

[४]दुख सौं दबि-छबि-सीव, ग्रीव, लै चलीं नाल सी।
अलक-अलिन के भार, नमित जनु कमल-माल सी॥

[९५]

[५]हिय भरि बिरह-हुतास, उसासन-सँग आवत झर।
चले कछुक मुरझाइ, मद-भरे अधर-बिंब-बर॥

पाठान्तर—

(क) १—पिय-लालहि के बंक...।
(ट) ,,—लाल रसिक के बंक-बचन सुनि, चकित भईं यौं।
(च) २—बाल-मृगन की माल, सघन...।
(त) ,,—बाल मृगन की संगति, बन-घन भूलि...।
(क) ३—अँखियाँ-अस।
(रा०) ४—दुख के बोझ छबि सीव, ग्रीव नै चली नाल सी।
अलक अलिन के भार, निहुरि मनु, कमल-नालसी
(ठ) ५—हिय भरि बिरह हुतासन, साँसन सँग आवत झर।

[९६]

१तब बोलीं ब्रज-बाल, लाल ! मौंहन अनुरागी ।
२सुन्दर गदगद-गिरा, गिरिधरहिँ, मधुरी लागी ॥

[९७]

अहो मौंहन ! अहो प्राननाथ !! सुन्दर३-सुखदाइक !!!
क्रूर-बचन जिनि कहौ, नाहिँ४ ए तुम्हरे लाइक ॥

[९८]

५जो पूँछैं कोउ धरम, तबहिँ तासों कहिये पिय ।
बिनु पूँछें हीं धरम, कितहिँ कहिऐ, दहिऐ हिय ॥

[९९]

धरम६, नेंम, जप, तप, ब्रत, संजम, फलहिँ बतावै ।
यह कहुँ नाहिँ न सुनों, जु फल फिरि धरम सिखावै ॥

पाठान्तर—

(अ) १—तब बोली ब्रज-नवल-बाल, लालहिँ अनुरागी ।
(गा०) २—गद्गद् सुन्दर गिरा, गिरि-गिरिधरहि मधुरीलागी
(च) ३—मौंहन...।
(गा०) ,,—अहो हो मोहन—प्रान-नाथ, मौंहन सुखदाइक ।
(ट) ४—अहो नहिँ तुम्हरे लाइक ।
(गा०) ,,—निठुर-बचन जनि कहो, नाहिँ न ए तुम्हरे लाइक
(ट) ५—जब काऊ पूछे धर्म तभी तासौं कहिये पिय ।
(क) ६—नैंम, धरम, जप, तप नहिँ कबहूँ फल जु बतावै ।
(ट) ,,—नैंम धरम, जप तप ए सब कोउ कहहिँ बतावैं ॥

[१००]

१और तिहारौ रूप, धरम के धरम हिँ मोहै।
घर मैं को तिय भरमैं, धरमैं या आगैं कोहै॥

[१०१]

तैसिय पिय की मुरली, जुरली, अधर-सुधा-रस।
सुनि निज-धरम न तजै, तरुनि त्रिभुवन मैं को अस॥

[१०२]

३नग, खग अरु मृगन हूं नाहिँ न धरम रह्यो है।
छौंने ह्वै रहौ पिया! अब न कछु जात कह्यौ है॥*

[१०३]

सुन्दर पिय कौ बदन निरखि कैं४को नहिं भूलैं?।
रूप-सरोबर माँझि सरस-अम्बुज जनु५ फूलैं॥†

[१०४]

कुटिल६ अलक, मुख-कमल, मनौं मधुकर मतवारे॥
तिन मैं मिलि गए चपल-नैंन, ह्वै मीन हमारे॥‡

पाठान्तर—

(च) १—अरु तुम्हरौ इहि रूप, धरम के भरमहिं मोहै।
धरमनु के तुम धरम, भरम या आगैं कोहै॥

(फ) २—त्योंही पिय की मुरली, जुरली, अधर-सुधा-रस।

(प) ३—नगन, खगन, औ मृगन तलक नहिँ धरम गह्योहै।

* उक्त पद (क) प्रति में नहीं है।

(च) ४—को सो जुन-भूल्यौ। (च) ५—भून्यौ।

† उक्त पद (क) प्रति में नहीं हैं।

(ट) ६—कुटिल अलक मनु अलबोले मधुकर मतवारे।
तिन मधि मिलि गए पिया! नैंन ह्वै मधुप हमारे।

‡ उक्त पद (क) प्रति नहीं हैं।

[१०५]

चितवनि मौंहन-मंत्र, भौंह जनु मनमथ-फाँसी।
१निपटि-ठगोरी आहि, मंद-मुसकनि-मृदु-हाँसी ॥*

[१०६]

अधर-सुधा के लोभ भईं, हम दासि तिहारी।
ज्यों२ लुब्धी पद-कमल, चंचला-कमला-नारी ॥†

[१०७]

३जो न देहु अधरामृत, तौ सुनि सुन्दरि-हरि।
करि हैं यह तन भसम, विरह-पावक मैं परि-परि ॥‡

[१०८]

४पुनि तुम्हरे पद परसि, बहुरि धरि हैं सुन्दर-अँग।
पीवहिँगीं निधरक अधरामृत, पुनि सँग-ही सँग ॥+

पाठान्तर—

(प) १—निपट ठगोरी आहि मन्द मृदु-मादक हाँसी।

* उक्त पद (ख) प्रति में नहीं।

(प) २—लुब्धी ज्यों पद कमला, नवला, चपला नारी।

† उक्त पद (ट) प्रति में नहीं है।

(ट) ३—जो न देहु यह अधर-अमृत, सुनि हो मौंहन हरि,
तो करिहैं तन छार यार पावक में परि-परि ॥

‡ उक्त पद (च) प्रति में नहीं है।

(ट) ४—पुनि पद पिय के परसि...।

(न) ,,—नव पिय-पदवी पाइ, बहुरि धरिहों सुन्दर अङ्ग।

(प) ,,—निधरक ह्वैं फिरि पीवहिँगीं, अधरामृत सँगहीं सँग
निधरक ह्वैं हम अधर-अमृत पीहैं फिरी हैं सँग ॥

+ उक्त पद (प) प्रति में नहीं है।

[१०९]

१प्रैंम-पगे सुनि बचन, आँच-सी लगी आइ जिय ।
पिघलि चल्यौ नवनीत,२ मीत सुन्दर मौंहन-हिय ।*

[११०]

बिहँसि मिले नँदलाल, निरखि ब्रजबाल बिरह-बस
जदपि आतमाराम, रमत भए परम-प्रैंम-रस ॥

[१११]

बिहरत बिपिन-बिहार, उदार३-नवल नँदनंदन ।
नव-कुमकुम-घनसारु, चारु, चरचित चित४ चंदन ॥

[११२]

अदभुत-साँवल-अंग, बन्यौं अदभुत५-पीताम्बरि ।
६मूरति धरैं सिंगार, प्रैंम-अंबर ओढ़ैं-हरि ॥

पाठान्तर—

(च) १—सुनि गोपिन के बचन प्रैंम के आँच-सी लगी जिय

(छ) २—मीत-मौंहन सुन्दर हिय ।

(य) ,,—नवनीत-सद्दस हिय ।

* उक्त पद (प) प्रति (ब) और (ट) में नहीं है ।

(ट) ३—रसिक...। (प) ४—तन...।

(त) ५—तन पीत-बसन तन । (थ) ५—पट-पीत-बसन तन ।

(थ) ६—मूरति धरि सिंगार, प्रैंम-अंबर पहिरैं जनु ।

(ट) ,,—मुकट धरैं सिंगार, प्रैंम-अंबर ओढ़ैं हरि ।

(प) ,,—प्रैंम-अंबर पहि बन

बिलुलित[1] उर-बनमाल, लाल जब चाल चलति बर ।
[2]कोटि-मदन की भीर, उठति छबि लुटति पगन पर ॥

[११४]

गोपी[3]-जन-मन मोहन, मोहन लाल बने यौं ।
अपनी[4] दुति के उड़गन, उड़पति घन खेलति ज्यौं ॥

[११५]

कुंजन-कुंजन डोलति, मनु[5] घन तैं घन आवत ।
लोचन त्रिपित-चकोरन के चित[6] चौंप चढ़ावत ॥

[११६]

सुभ[7]-सरिता के तीर, धीर, बलबीर गए तहँ ।
कोमल-मलै-समीर, छबिन की महा-भीर जहँ ॥

पाठान्तर—

(ख) १—बिगलति उर बनमाल, लाल जब चलत चाल बर ।
(,,) २—पुनि गिरति चरन-तर ।
(घ) ,,—कोटि मदन की पीर उठत इत लुठत पगन-तर ।
* यह पद्य (क) और (ख) प्रति में नहीं है ।
(क) ३—गोपी जन मन मोहन मोहन लाल बने बन ।
(,,) ,,—अपनी दुति के ओज लिए खेलति घन ॥
(ट) ,,—अपनी द्युति के उजरे-उड़पति, मनु खेलति घन ।
(ग) ४—"अपनी-अपनी दुति के उड़पति घन खेलत ज्यौं ।
(क) ५—जनु घन तैं घन आवत ।
(ठ) ६—मनु चौंप चढ़ावत । (ट) ७—सुभग-विटप के तीर ।
(ग) ७—सुभग-सरित के तीर धीर...।

[११७]

कुसुम-धूरि घूँधरी कुंज, छबि-पुंजन छाई।
[1]गुंजत मंजु मलिंद, बैंनु जनु बजति सुहाई॥

[११८]

इत मल्लिकति मालती, चारु[2] चंपक चित-चोरत।
उत[3] घनसार, तुसार, मिली मंदार झकोरत॥

[११९]

[4]इत लवंग-नव-रंग, एलची झेलि रही रस।
[5]उत कुरवक, केवरौ, केतकी गंध-बंध-बस॥

[१२०]

इत तुलसी छबि-हुलसी, छाँड़ति परिमल[6]-पूटैं।
उत कमोद आमोद[7], गोद, भरि-भरि सुख लूटैं॥

[१२१]

फूलन माल बनाइ, लाल पहिरति[8]-पहिरावति।
सुमन सरोज सुधाबर, ओज मनोज बढ़ावति॥*

पाठान्तर—

(ट) १—गुंजत मंजु अलिन्द, बैनु सी बजत सुहाई।
(त) २—उतै चंपक चित छोरत।
(छ) ३—"औ...।   (च) ३—वरु...।
(प) ,,—इत घनसार तुषार, मलै-मन्दार झकोरत।
(प) ४—राइवेलि वरु एल-वेलि, मृगमदहिं वेलि इत।
(,,) ५—नव-कुरबक, केवरौ, केतकी-गंध बंधु-उत।
(त) ६—प्रवल जु लपटैं।
(क) ७—अममोद गोद भरि-भरि सुख दपटैं।
(ट) ८—सुधावत...।

* उक्त पद्य (क) और (च) प्रति में नहीं है।

[१२२]

१उज्जल-मृदु वालुका, पुलिन अति सरस सुहाई।
२जमुना जू निज कर-तरंग करि, आपु बनाई॥

[१२३]

वैठे तहँ सुन्दर सुजान, ३सब सुख-निधान हरि।
विलसतविविध-विलास४,हास-रस-हिय-हुलास-भ

[१२४]

५परिरंभन, मुख-चुंवन, कच, कुच, नीवी परसत।
६सरसत प्रेम अनंग, रंग नव-घन ज्यौं वरसत।

अनंग-आगमन

[१२५]

७तब आयौ वह "काम", पंचसर कर हैं जाकैं।
८ब्रह्मादिक कौं जीति, बढ़ि९ रह्यौ अति मद ताकैं

पाठान्तर—

(क) १—उज्जल मृदुल वालुका, कोमल सुभग सुहाई।
(..) २—श्री जमुना जू निज तरंग करि, यह जु बनाई॥
(ग) ३—सुख के निधान हरि।
(भ) ,,—सब गुन निधान-हरि।
(च) ४—अति-आनँद भरि।
* यह पद (क) और (ट) प्रति में नहीं है।
(ग) ५—परिरंभन-चुंबन कर, नख, नीवी-कुच परसत।
(ग१०) ६—बरसत [हिं] अनंग-रंग नव-घन ज्यौं बरसत।
(ट) ७—तहँ आयौ यह मैन...।
(ग) ,,—गरब अति बढ़ि रह्यौ ताकैं।
(च) ८—ब्रह्मादिक सिव जीत, बढ़ि रह्यौ अति मद ताकैं

[१२६]

निरखि ब्रज-बधू संग, रंग-भीने किसोर तन।
¹हरि, मनमथ कर मथ्यौ, उलटि वा मनमथ कौ मन ॥*

[१२७]

²मुरझि पर्यौ तहँ मैंन, कहूँ धनु, कहूँ बिसिख बर।
रति देखति पति-दसा भीति ह्वै मारति उर-कर ॥

[१२८]

³पुनि-पुनि पिय-अवलोकति, रोवति, अति-अनुरागी।
मदन-बदन अंमृत-चुवाइ, भुज-भरि लै भागी ॥

[१२९]

⁴अस अदभुत मौंहन-पिय सौं मिलि, गोप-दुलारी।
⁵अचरज नहिँ जो गरब करैं, हरि जू की प्यारी ॥

पाठान्तर—

(प) १—हरि मनमथ कौ मथ्यो...।

* उक्त पद्य (च) (य) और (ट) प्रति में नहीं है।

(क) २—मुरझि पर्यौ लखि मैंन, कहूँ धनु, कहूँ निषंग बर।
दखति रति, पति-दसा भीति भई मारति हिय कर।

(रा०) ,,—लखि रति पति की दसा, भीति भई मारत उरकर

(क) ३—पुनि-पुनि पियहिँ अलिंगति रोवति...।

(च) ४—अदभुत अस मौंहन-पिय सौं मिलि गोप-कुमारी।

(त) ,,—अस अदभुत पिय—मौंहन सौं मिलि गोप...।
अचरज नाहिँ न गरब होइ, गिरिधर की प्यारी।

(च) ५—नहिँ अचरजु जो गरब करैं, गिरिधरजु की प्यारी

[१३०]

रूप भरीं, गुनभरीं, भरीं पुनि परम-प्रेम-रस ।
[1]क्यों न करें अभिमान, भयौ मोहन जिनिके बस ॥

[१३१]

[2]नदी-नीर गंभीर, तहीं, भल भँवरी परहीं ।
[3]छिल-छिल सलिल न परें, परें तौ छवि नहिं [4] करहीं

[१३२]

[5]प्रेम-पुंज बरधन कारन, ब्रजराज-कुंवर-पिय ।
[6]मंजु-कुंज में तनक दुरे, अति प्रेम-भरे-हिय ॥

इति श्रीमद्भागवते-महापुराणे रास-क्रीड़ा वर्णन
रसिक जीवन-प्राणनाम प्रथमोऽध्यायः ।*

पाठान्तर—

(ट) १—करें क्यों न अभिमान, कान्ह-भगवान किए बस ।
(न) ,,—क्यों न करें अभिमान, कियौ मोहन अपने बस ॥
(ड) २—जहँ नदि-नीर-गंभीर, तहीं जल भँवरी परहीं ।
(प) ३—सलिल न परें, छिल-छिले, परें पै छवि ना करहीं ॥
(रा०) ४—करहीं ।
(व) ५—प्रेमहिं पुंज बढ़ावन, कारन प्यारौ मोहन-पिय ।
(ट) ,,—प्रेम जु पुंज बढ़ावन, मिलौ ब्रजराज कुँवर पिय ।
(,, ६—कुंज-मंजु में दुरे नैंकु, अति भरयौ प्रेम-हिय ॥

* श्रीमद्भागवत् में इस अध्याय का नाम "भगवत्-रास-क्रीड़ा वर्णन" करके लिखा है ।

द्वितीय अध्याय

[१]

१मधुर-वस्तु जे खात, निरंतर सुख तौ भारी ।
बिच-बिच कटु औ अम्ल, तिक्त तैं अति रुचिकारी ॥*

[२]

२ज्यौं पट पुट के दिऐं, निपट-अति-सरस परै रंग ।
३तैसैंई रंचक-बिरह, प्रैम कौ पुंज बढ़ै अंग ॥

पाठान्तर—

(त) १—वस्तु मधुर जो खाइ, निरंतर सुख है भारी ।
वीच-वीच कटु, अमल, तिक्त, अतिसै रुचिकारी ॥

* राधाकृष्ण दासजी ने उक्त पद्य का पाठ, मूल में इस प्रकार लिखा है—

ज्यौं कोऊ परम-मधुर-मिश्री सों खात निरन्तर ।
वीच-वीच सन्धान, निकल-रस अतिसय रुचिकर ॥

(अ) २—जैसैं पट-पुट दऐं, निपट अति चढ़ै सरस-रँग ।
(क) ,,—ज्यौं पटु-पुट के दिऐं निपट ही रसहि परत रँग ।
(ट) ,,—ज्यौं पट कौ पुट दऐं, सरस अति चढ़ै निपट रँग ।
(,,) ३—त्यौंई रंचक विरह, वढ़ावत प्रैम-पुँज अँग ।
(च) ,,—तैसैंहीं वर विरह, प्रैम के पुँज बढ़ै अँग ।
(छ) ,,—रंच-विरह के बढ़ैं, प्रैम के पुँज प्रगट अँग ॥

[६]

१हे मालति ! हे जाति-जूथि के !! सुनि हित दै-चित ।
मान-हरन, मन-हरन, लाल-गिरिधरन लखे इत ॥

[७]

२हे केतकि ! इत तें चितए, कितहूँ पिय रूसे ।
३कै नंद-नंदन ! मँद-मुसकि, तुमरे मन-मूँसे ॥

[८]

४हे मुक्ताफल-वेलि ! धरैं मुक्ताफल-माला ।
५निरखे नैंन-बिसाल, लाल-मौंहन नँदलाला ॥

पाठान्तर—

(क) १—हे मालती ! हे जाति-जूथि !! सुनि दै हित-चित ।
मान-हरन मन-हरन गिरिधरन-लाल लखे इत ॥

(क) २—हे कतकी ! इत तू कितहूँ चितए पिय-रूसे ।
(ख) ,,—अहो केतकि ! इत कित हूँ तुम चितए पिय-रूसे ।
(घ) ,,—हे कतकी ! कितहूँ इत तैं चितए पिय-रूसे ।
(च) ३—कै मन-मौंहन मुसकि-मन्द, तुव मन मूँसे ॥
(प) ,,—नंद-नँदन किधौं मंद-मुसकि तुम्हरे मन-मूँसे ॥
(फ) ,,—किधौं नँद-नंदन मंद-मुसकि तुमरेउ मन-मूसे ।
(ब) ,,—नँदनदन कै मुरि मुसिकिन, तुमरेउ मन मूसे ॥
(ख) ४—अहो...।
(ट) ५—देखे नैंन-बिसाल, मौंहना नँद के लाला ॥
(च) ,,—देखे कहूँ बिसाल-नैंन, तैं नँद के लाला ॥
(झ) ,,—देखे नैंन-बिसाला, मौंहन नँद के लाला ॥

[९]

१हे मन्दार उदार बीर ! करबीर महा-मति ।
देखे कहुँ बलबीर, धीर, मन हरन धीर-गति ॥

[१०]

२हे चन्दन ! दुख-दन्दन ! सब की जरनि जुड़ावौ ।
नँद-नंदन, जग-चंदन, चंदन, हमहिं ३बतावौ ॥

[११]

४पूँछौ री ! इन लतन, फूलि रहीं फूलन जोई ।
सुन्दर-पिय के परसि बिना, अस फूल न होई ॥

[१२]

५हे सखि ! ए मृग-बधू, इनहिं किन पूछौ अनुसरि ।
६डहडहे इनके नैन, अबहिं कहुँ देखे हैं हरि ॥

पाठान्तर—

(ग) १—अहो उदार-मन्दार-बीर ! कर-बीर महा-मति ।
तैं देखे बलबीर, धीर, मन-हरन धीर-गति ॥
(अ) २—अहो चंदन, दुख-कंदन, दुख सब जरत सिरावहु
(क) ,,—हे दुख-कंदन ! चंदन ! सब की जरनि सिरावहु ।
जग-बंदन, नंद-नंदन, चंदन हमैं बतावहु ॥
(ग) ३—बितावहु ॥
(क) ४—पूछहु री ! इन लतनि, फूलि रहीं फूलनि जोई (सोई)
सुन्दर-पिय कर-परसि बिना, अस फूलि न होई (होंही)
(अ) ५—हे सखि ! ये मृग-बधू ! इनहिं किन पूछहु अनुसरि
(क) ,,—हे सखि ! ए मृग-बधू, इन्हें पूछौ किन अनुसरि ।
(ग) ६—इनकै सब बड़े-नैन, अबै देखे हैं कहुँ हरि ॥
(ना०) ,, बड़-बड़ इनके नैन, अबहीं कहुँ निरखे हरि ॥

[१३]

१अहो पवन ! सुभ-गमन, सुगँध २संग थिर जु रही चलि
३दुःख-दवन, सुख-भवन, रवन, कहुँ तैं चितए चलि ॥ *

[१४]

४अहो चंपक वरु कुसुम ! तुमहिँ छवि सब सौं न्यारी
५नैकु बतावहु अहो ! जहाँ हरि कुंज बिहारी ॥ †

[१५]

६अहो अंब ! अहो निंब ! कदँब ! क्यौं रहे मौन गहि
७अहो उतंग बट ! तुंग बीर ! कहुँ तुम इत-उत लहि ॥ ‡

पाठान्तर—

(च) १—अहो सुभग बन सुगँध ! पवन सँग थिर जु रही चलि ।
(छ) २—नैंसुक थिर ह्वै रहि ।
(च) ३—सुख के भवन, दुख-दमन, रमन इत तै चितए वलि ॥
(छ) ,,—दुःख दवन औ रवन, कहूँ इत-उत हैं लहि ।
* उक्त पद (क) और (च) प्रति में नहीं है ।
(ट) ४—अहो चंपक ! अहो कुसुम ! तुमैं सब सौं छवि न्यारी ।
(प) ५—नैंकु बताइ जु देहु, कहाँ हरि कुंज-विहारी ॥
† उक्त पद हमारी हस्तलिखित प्रति मे नहीं हैं और साथ ही (क) प्रति में भी नहीं हैं ।
(क) ६—अहो कदंव ! अहो निंव ! अंब ! कत रहे मौन गहि ।
(त) ७—अहो उतंग वट ! सुरँग पीय, कहुँ इत-उत तुम लहि ॥
(रा०) ,,—अहो बढतुंग सुरंग बीर ! कहूँ इत उलहे लहि ।
‡ उक्त पद 'चन्द्रिका' में नहीं हैं ।

[१६]

अहो असोक! हरि-सोक, लोक मनि पियहि बतावहु
अहो पनस! सुभ-सरस, मरति, तिय अमिय पियावहु

[१७]

जमुना-तट के विटप-पूँछि, भईं निपट-उदासी।
क्यों कहिहैं सखि! महा-कठिन, तीरथ के बासी॥

[१८]

हे अवनी! नवनीत-चोर, चित-चोर हमारे।
राखे कितै दुराइ, बतावहु प्रान-पियारे॥

पाठान्तर—

(ग) १—हे असोक! हर सोक, लोक-मनि पीया बतावौ।
अहो पनस! सुभ सरस, मरत तिय अमी पियावौ॥

(रा०) २—तीय सब मरनि जियावहु।

१ यह पद (क) और (ख) प्रतियों में नहीं है।

(ग) ३—जमुन निकट के विटप, पूछि भईं निपट-उदासी।
कहि हैं क्यों सखि! महा-कठिन ए तीरथ-बासी॥

(ग) ४—क्यों कहि हैं सखि! ए महा-कठिन हैं तीरथ-बासी

(ग) ५—अहो...।

(ग) ६—[illegible] दुराइ, [illegible] कित प्रान-पियारे॥

([illegible]) ,,—[illegible] दुराइ, [illegible] प्रान पियारे॥

([illegible]) ,,—[illegible] दुराइ, [illegible] प्रान हमारे॥

[१९]

१हे तुलसी ! कल्यान, सदाँ गोबिँद-पद-प्यारी ।
२क्यौं न कहौ सखि ! नँद-नँदन सौं बिथा हमारी ॥

[२०]

३जहँ आवत तम-पुंज, कुंज-गहबर तरु-छाँई ।
४अपने मुख-चाँदने, चलतिँ सुन्दरि बन-माँईं ॥

[२१]

५इहि विधि बन-बन ढूँढ़ि, पूँछि उनमत की नाईं ।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला-मन-भाईं ॥

[२२]

६मौंहन लाल रसाल हिँ, लीला इनहीं सोहै ।
७केवल तनमैं भईं, न जानैं कछु हम कोहैं ॥

पाठान्तर—
(घ) १—अहो...।
(च) २—क्यौं न कहौ तुम, मन-मौंहन सौं, बिथा हमारी ।
(क) ,,—क्यौं न कहति तू नंद नँदन सौं दसा जु सारी ॥
(ट) ,,—क्यौं न कहैरी ! नंद-सुवन सौं बिथा हमारी ॥
(प) ३—आवैं जहँ तम-पुंज...।
(य) ,,—जब आइयतु तम-गहन, कुंज-गहवर तरु छाँहीं ।
अप-अप मुख चाँदने, चलीं सुन्दर बन माँहीं ॥
(रा०) ,,—अपने-मुख चाँदने, चलति सुन्दर तिन माँहीं ।
(य) ५—इहि विधि वन, घन ढूँढ़ि, बूझि उनमत की नाहीं ।
लगी करन मन-हरन, लाल-लीला वन माँहीं ॥
(च) ६—लीला मौंहन लाल, रसाल की इत ही सोहै ।
(ट) ७—तन मैं केवल भईं, कछु न जानैं हम कोहैं ॥

[२३]

[1]हरि की सी सब चलनि, बिलोकनि, बोलनि, हेरनि
[2]हरि की सी गैयन टेरनि, घेरनि, पट-फेरनि ॥*

[२४]

[3]हरि की सी बनि आवनि, गावनि अति-रस-रंगी।
हरि-सम कन्दुक रचनि, नच्चनि नव-ललित-त्रिभंगी

[२५]

[4]श्रीदामा बनि स्याम, चढ़नि कोऊ कान्हर-काँधे।
[5]कोउ जसुमति बनि कान्ह, दाम गहि ऊखल-बाँधे

पाठान्तर

(ट) १—हरि की चलनि, बिलोकन, हरि की सी हेरनि।

(घ) १—चलनि, बिलोकनि, हरि की सी त्यों अंबर-फेरनि ॥
हरि सी गौवन घेरनि, टेरनि, हरि की सी हेरनि।

(ग) २—त्यों गावन, नाचन, घेरनि, मुख-टेरनि बोलनि ॥

[२६]

कोउ जमलार्जुन भंजति, गंजति-काली-बल कौं।
कोउ कहै मूँदहु नैंन, सोच नहिँ दावानल कौ ॥*

[२७]

१कोउ गिरिवर अम्बर कौं कर-धर बोलति है तब।
निधरक इहिं तर रहौ, गोप, गोपी, गोधन सब ॥

[२८]

२भृंगी-भै तैं भृंग होइ, जब३ कीट महा-जड़।
४कृष्ण-प्रेम तैं कृष्ण होइ, ५तब का अचरज-बड़ ॥

[२९]

६तब पायौ पिय-पद-सरोज कौ रुचिर-खोज तहँ।
७अरिदर, अंकुस, कमल, कलस, ८धुज, जगमगात जहँ

पाठान्तर--

* उक्त पद "राधाकृष्णदास जी सं० पुस्तक" नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं है।

(क) १—कोउ इक अम्बर कौं गिरिवर कर-धर बोलत तब।
निहडर इहि तर रहौ, गोप, गोपी, गाइन सब ॥

(च) २—भृंगी-भय ते भृंग होत, इकु कीट महा-जड़।

(क) ३—वह...। (ग) ३—ज्यौं...।

(ट) ४—कृष्ण प्रेम सौं कृष्ण होइ, यह नहिँ अचरज—बड़

(च) ५—कछु अचरज नहिँ बड़ ॥

(झ) ,,—कृष्ण भगति तैं कृष्ण हौंन, कछु नहिं अचरज बड़

(य) ६—पायौ तब पिय-पद-सरोज कौ, रुचिर-खोज तहँ।

(अ) ७—अरिदल अंकुस कलस-कमल अति जगमत जहँ ॥

(च) ,,—जव, गद, अंकुस, कुलिस, कमल, धुज जगमात जहँ

(ज) ८—अदि जगमगात जहँ।

[३०]

१जो रज सिव, अज खोजत, जोजत जोगी जन-हिय।
२सो रज बंदन करन लगीं, सिर-धरन लगीं तिय ॥

[३१]

३पुनि निरखे ढिंग जगमगात, पिय-प्यारी के पग ।
४चितै परसपर चकित भईं, जुरि चली तिहीं मग ॥

[३२]

५चकित भईं सब कहति जात, बड़-भागिन को अस।
६परम-कांत एकांत पाइ, पीवनि अधरन रस ॥

पाठान्तर—

(अ) १—जो रज अज, सिव, कमला, ढूँढति जोगी-जन हिय
(रा०) ,,—जो रज सिव, अज, कमला खोजत जोगी-जन हिय
(ट) २—सो रज बंदन करति, धरति सिर बार-बार तिय ।
(रा०) ,,—ते सब बंदन करन लगीं, सिर धरन लगीं तिय ॥
(अ) ३—पुनि पेखे अति-जगमगात, ढिँग प्यारी के पग ।
(च) ,,—तब देखे ढिग जगमगात, प्यारी-तिय के पग ।
(रा०) ,,—देखे ढिग जगमगत, तहाँ प्यारी—तिय के पग ।
(अ) ४—चकित भईं सब चितै, परसपर चलीं तिहीं मग ॥
(क) ५—चकित चितै सब कहैं कौन यह बड़-भागिन-अस ।
(छ) ,,—चकित भईं सब कहति, कौन यह बड़-भागिन-अस
(क) ६—परम-कांत एकांत लाइ, पीवति जु अधर-रस ।
(छ) ,,—परम-कंत एकांत पाय, पीवत जु अधर-रस ॥
* उक्त पद (अ) और (प) दो प्रतियों में नहीं हैं।

[३३]

१आगैं चलि अविलोकी, इक नव-पल्लव-स्त्रैंनी ।
२जहँ पिय निज कर कुसुम, सुसुम लै गूँथी बैंनी ॥

[३४]

३तहँ पायौ इक मंजु-मुकर, मनि-जटित बिलोलै ।
तिहिँ पूँछति ब्रज-बाल, बिरह-घस४ सोऊ न बोलै

[३५]

५तरक करैं आपुस मैं, कहौ इहि क्यौं कर लीन्हौं ?
६तिन मधि हिय की जानि, कोऊ यह उत्तर दीन्हौं

पाठान्तर—

(ट) १—चलि आगैं अविलोकी, नव-नव पल्लव सेनी ।
(रा०) „—आगैं चलि पुनि अवलोकी, नव-पल्लव सैंनी ॥
जहँ पिय कुसुम, सुसुम हाथ लै गूँथी वेनी ।
(रा०) २—जहँ पिय कुसुम, सुसुम लै सुकर गुही है वेनी ॥
(त) „—जहाँ कुसुम लै हाथ पिया, रचि गूँथी वेनी ।
(ठ) ३—पायौ तब इक मुकर-मंजु, मनि-जड़ित बिलोलै ।
पूँछति तिहि ब्रज-बाल, बिरह सौं सोऊ न बोलै ॥
(ट) ४—भरि...।
(च) ५—करति तरक आपस मैं, कहौ कर यह क्यौं लीनौं ?
(रा०) „—तर्क करत अपमाहिँ, अहो यह क्यौंकर लीन्हौं ?
(प) „—करैं तरक ब्रज-बाल, अहो यह कर क्यौं लीनौं ?
तिन मैं कोऊ तिनके हित कौ, नहिँ उत्तर दीनौं ॥
(च) ६—तिन मैं कोऊ तिनके हित की, जिन उत्तर दीनौं ॥
(क) „—तिन मधि तिन के हिय की, जानि इक उत्तर दीनौं
(रा०) „—तिन मैं तिनके हिय की जानि, उन उत्तर दीन्हौं

[३६]

१बैंनी-गूँथन-समैं, छैल पाछैं बैठे जब।
२सुन्दर-बदन बिलोकन-सुख कौ अंत भयौ तब॥

[३७]

३तातैं मंजुल-मुकर, सुकर लै बाल दिखायौ।
स्री-मुख कौ प्रतिबिंब सखी! तब सनमुख आयौ॥

[३८]

४धन्न कहति भई ताहि, नाहिँ कछु मन मैं कोपीं॥
निरमतसर जे संत, तिननि चूरामनि-गोपीं॥

[३९]

५इन नींके आराधे, हरि-ईस्वर-बर जोई।
६तातैं अधर-सुधा-रस, निधरक पीवति सोई॥

पाठान्तर—

(अ) १—गूंथन बैनी समैं, लाल, बैठे पाछैं जब।
(च) ,,—पटियनु गूँथनि समैं, लाल पाछैं बैठे जब॥
(रा०) ,,—बैनी गूंथन समय, छबीलो पाछैं बैठौ जब।
(च) २—बदन विलोकत सुन्दर सुख कौ, भयौ अंत तब॥
(रा०) ,,—सुन्दर वदन विलोकनि, पिय के अन्तस भयौ तब
(अ) ३—मंजुल-मुकर सुकर लै, तातैं बाल दिखायौ।
सखि! श्रीमुख-प्रतिबिंब, तबै उन सनमुख आयौ॥
(अ) ४—कहति धन्य भई ताहि, कछू मन नाहिन कोपीं।
निरमतसर-संतन की हैं, चूरामनि-गोपीं॥
(प) ५—नींकैं उन आराधे, ईश्वर-बर हरि जोई।
निधरकि तातैं अधर-सुधा-रस पीवति सोई॥
(ट) ६—तातैं अधरामृत निधरकि, अति पीवति सोई।
(न) ,,—तातैं अधरामृत अति निधरकि, पावति सोई॥
(रा०) ,,—तातैं निधरक अधर-सुधारस, पीवत सोई॥

[४०]

सोऊ पुनि अभिमान-भरी, यौं कहनि लगी तिय।
मो पैं चल्यौ न जाइ, जहाँ तुम चलन चँहत पिय

[४१]

१पुनि आगैं चलि तनिक-दूरि, देखी सोई ठाढ़ी।
२जासौं सुन्दर-नंद-कुँवर-पिय, अति-रति बाढ़ी॥

[४२]

३गोरे-तन की जोति, छूटि छवि छाइ रही घर।
४मानौं ठाढ़ी सुभग-कुँवरि, कंचन-अवनी पर॥

[४३]

५घन तैं बिछुरि बीजुरी, जनु मानिनि-तनु काछैं।
किधौं चंद सौं रूसि, चन्द्रिका रहि गई पाछैं॥

पाठान्तर—

(क) १—आगैं चलि पुनि नैंकु-दूरि, देखो सोई ठाढ़ी।
सुन्दर-नंद-कुँवर-वर-पिय की, जासौं रति बाढ़ी॥
(ख) २—जासौं-नंद-सुवन-वर-पिय की, अति-रति बाढ़ी।
(ग) ,,—जासौं सुन्दर-नंद-सुवन-पो, अति-रति बाढ़ी॥
(अ) ३—तन-गोरे तैं ज्योति, छूटि छवि छाइ रही यौं।
ठाढ़ी मानौं सुभग-कुँवरि, कंचन-अवनी त्यौं॥
(प) ४—मानौं कुँवरि-सुभग ठाढ़ि, अवनी-कंचन त्यौं॥
(रा०) ,,—मानौं ठाढ़ी कुँअरि, सुभग-कचन-अवनी पर।
(प) ५—जनु घन तैं बिछुरी बिजुरी, मानिन-तुन-काछें।
(रा०) ,,—घन तै जनु बिजुरी-बिछुरी, मानिन-तनु काछैं।
(ट) ,,—बिछुरि बीजुरी जनु घन तैं, नूतन-छबि काछैं॥

[४४]

१नैंननि तैं जलधार, हार-धोवति धरि-धावति।
भँवर उड़ाइ नहिं सकति, बास बस मुख-ढिंग आवति

[४५]

क्वासि-क्वासि पिय-महाबाहु, यौं बदति अकेली।
२महा बिरह की धुनि सुनि, रोवत खग, मृग, बेली

[४६]

ता सुन्दरी की दसा, देखि कछु कहति न आवै।
३विरह-भरी-पूतरी होइ तौ, कछु छबि पावै ॥*

[४७]

४धाइ सुजन भरि लई, सबन लै लै उर लाई।
मनौं महा-निधि खोइ, मध्य५ आधी-निधि पाई ॥

पाठान्तर—

(अ) १—नैंननि के जल हार, हियौं, धोवति धरि धावति।
(प) ,,—नैंननि तै जलधार, वहति अविरल अति धावति।
भँवर उड़ाइ न सकति, वास-बस जे ढिग आवति ॥
(अ) २—विरह-भरी की धुनि, सुनि रोवति खग, द्रुम, वेली
(च) ३—विरह-भरी पुतरी जु होइ, त्यौं असि छवि पावैं ॥
* उक्त पद (भ) और (ट) प्रति में भी नहीं हैं। तथा राधा-कृष्ण दास जी संपादित प्रति में भी नहीं हैं।
(ट) ४—भुजन धाइ भरि लई, सबनि उर लै-लै लाई।
(रा०) ,—दौरि भुजन भरि लईं, सबन लै-लै उर लाईं।
(ह) ५—बीच...।
(रा०) ,,—भुअ...।

[४८]

१कोउ चुंबति मुख-कमल, कोऊ भ्रू, भाल सु अलकैं।
जामैं पिय-संगम के सुन्दर, श्रम-कन झलकैं ॥*

[४९]

२पौंछति अपने अंचल, रुचिर-दृगंचल तिय३ के।
४पीक-भरे सुकपोल, लोल-रद-छद जहँ पिय५ के ॥

[५०]

६तिहि लै तहँ तैं बहुरि-बहुरि, जमना-तट आई।
७नँद-नंदन जग-बंदन पिय जहँ, लाड़-लड़ाई ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम-स्कन्धे रास क्रीड़ायाँ
'गोपी विश्लेप' वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्यायः।*

पाठान्तर—

(च) १—चुंबति कोउ मुख-कमल, कोऊ जु सुधारति अलकैं।
(श्र) ,,—चूमति कोऊ मुख-कमल, कोऊ भुज, भाल सु अलकैं।
तामैं सुन्दर-स्याम की मंजुल-स्रम-कन झलकैं॥

* उक्त पद (क) प्रति में नहीं हैं।

(च) २—अपने अंचल, रुचिर-दृगंचल, पौंछति तिय के।
(छ) ३—ती के।
(च) ४—पीक-भरे सु कपोल, लोल-रद नख-छत पिय के॥
(छ) ५—पी के।

† इससे पूर्व का पद और उक्त पद (क) और (ट) प्रतियों में नहीं हैं।

(प) ६—लै तहँ तैं तिहि अहो! बहुरि तट-जमना आई।
(रा०) ,,—जित-तित तैं सब बहुरि-बहुरि-जमुना-तट आई
(प) ७—नँद-नंदन मन मौहन-पिय, जहँ लाड़ि लड़ाई।
(रा०) ,,—जहँ नँद-नंदन जग-वंदन-पिय, लाड़ि लड़ाई॥

*मूल भागवत में उक्त अध्याय का "कृष्णान्वेषण" नाम लिखा है

तृतीय-अध्याय

[१]

१कहनि लगीं अहो कुंवर-कान्ह ! प्रगटे ब्रज जब तैं ।
२अवधि-भूत-इन्दिरा-अलंकृत ह्वै रही तब तैं ॥

[२]

३अति सै-सुख-सरसावत, ससि ज्यौं बढ़त बिहारी ।
पुनि-पुनि प्यारे ! गोप-वधू प्रिय निपट तिहारी ॥*

[३]

४नैंन-मूँदिवौ महा अस्त्र लै हाँसी-फाँसी ।
कित मारत हौ सुरतनाथ ! बिनु-मोल की दासी ॥

पाठान्तर—

(य) १—लगीं कहनि यौं कान्ह-कुँवर, ब्रज प्रगटे जब तै ।
(रा०) २—अवधि-भूत इन्द्रादि इहाँ क्रीड़त हैं तव तैं ॥
(य) ,,—सब कौं सुख बरसावत, ससि ज्यौं बढ़ति इढारी ।
(रा०) ,,—सब कौं सब-सुख बरसत, सरसत बड़-हितकारी
तिन मैं पुनि ए-गोप-वधू पिय निपट तिहारी ॥
* उक्त पद (क) प्रति में नहीं है ।
(ट) ४—महा-अस्त्र लै नैंन-मूँदिवौ, हाँसी की फाँसी ।
मारत हो क्यों (कत) सुरतनाथ, बिनु-मोलहि दासी ॥

[४]

१विष तें, जल तैं, ब्याल-अनल तैं, दामिन-झर तैं ।
क्यौं राखीं ! नहिँ मरन दईं ! नागर-नग-धर तैं ॥

[५]

२जनु जसुधा तैं प्रगट भए, पिय ! अति इतराने ।
बिस्व-कुसल-कारन विधना, ३बिनती-कार आने ॥

[६]

४अहो मित्र ! अहो प्रान-नाथ ! इहि अचरज-भारी
अपने जन कौं मारि, करहु का की रखवारी ॥

[७]

जब पसु-चारन चलत, चरन-कोंमल धरि बन मैं ।
५सिल, तृन, कंटक अटकत, कसकत हमरे मन मैं ॥

पाठान्तर—

(अ) १—विष-जल तैं औ ब्याल-अनल पुनि दामिनि-झर तैं ।
(रा०) „—विष-जल तै, ब्याल तैं, अनल तैं, चपला-झर तैं ।
राखीं क्यौं ! मरन दईं नहिँ, नगधर-नागर तैं ॥
(अ) २—जब तैं जसुधा-सुवन भए, तब तैं इतराने ।
(च) „—जनु तुम जसुधा-सुत न भए पिय अति-इतराने ॥
(ट) „—जसुधा सुत जनु तुम न भए पिय बहु इतराने ।
बिस्व-कुसल के काज, अहो बिनती करि आने ॥
(च) ३—विधि न विनती के आने ॥
(रा०) ४—अहो मीत ! अहो प्राननाथ ! यह अचरज-भारी
अपननि जौ मारि हौ, करि हौ काकी रखवारी ॥
(रा०) ५—मिल तिन कंटक, अंटक, कारक हमरे मन में ॥

[८]

प्रनत-मनोरथ करन, चरन सरसीरुह १पिय के।
२का घटि जैहै नाथ ! हरत दुख हमरे-जिय के ॥

[९]

३कहाँ हमारी प्रीति, कहाँ पिय ! तुव निठुराई।
४मनि पखान सौं खचै, दई तैं कछु न बस्याई ॥

[१०]

५जब तुम कानन जात, सहस-जुग-सम बीतत छिनु।
छिन बीतत जिहि-भाँति, हमहिं जानत पिय तुम-बिनु

[११]

६पुनि कानन तैं आवत, सुन्दर-आनन देखैं।
७तहँ बिधना अति-क्रूर, करी पिय ! नैंन-निमेखैं ॥

पाठान्तर—

(भ) १—पी के।
(प) २—जैहै कहा घटि नाथ ! हरत दुख हमरे-हिय के।
(रा०) ,,—वंचक रंचक काहि न हरिये दुख या ही के ॥
(च) ३—प्रीति हमारी कहाँ, कहाँ तुमरी निठुराई।
मणि पखान तैं खचै, कछू न दईय वसाई ॥
(रा०) ४—मनि-पखान सौं छैकि दई सौं कछु न वसाई।
(ट) ५—कानन तुम जब जात, सहस-जुग बितति छिनु-छिनु।
(रा०) ,,—जब पुनि कानन जात, सात-जुग सम बीतत छिनु
बितति दिन जिहि भाँति हमीं जानति पिय तुम बिनु
(अ) ६—जब कानन सौं आवत, आनन-सुंदर देखैं।
(रा०) ,,—जब पुनि बिपिन तैं आवत, सुन्दर-आनन देखैं।
(प) ,,—जो कैसैं हूँ साँझ समैं, मोहन-मुख देखैं।
(अ) ७—तहँ यह बिधिना-क्रूर, करि धरी नैंन निमेखैं ॥
(क) ,,—तौ ए बिधिना-क्रूर, करी अति-नैंन-निमेखैं।
(रा०) ,,—तब इम बिधिना-क्रूर, रची लै नैंन निमेखैं ॥

[१२]

बुध-जन-मन-हरनी-बानी-बिनु, जरति सबै तिय।
¹अधर-सुधा-आसव तनकै, प्यावहु ज्यावहु पिय ॥*

[१३]

²जदपि तिहारी-कथा, अमृत-सम ताप-सिरावै।
अमर-अमृत कौं तुच्छ करै, ब्रह्मादिक गावै ।†

[१४]

जिन यह प्रेम-सुधाधर-तुम्हरौ-मुख निरख्यौ पिय।
तिनकी जरन नहिं मिटी, रसिक-संविद कोविद हिय‡

[१५]

संतत- भै तैं अभै-करन, कर-कमल तिहारौ।
का घटि जैहै नाथ! तनक सिर छुवत हमारौ ॥+

पाठान्तर—

(च) १—अधर-सुधासव सहित, तनक प्यावहु ज्यावहु जिय।

* उक्त पद (अ) (क) (ट) और नागरी प्रचारिणी वाली प्रतियों में नहीं हैं।

(अ) २—यह तुमरी अहो कथा, अमृत सी ताप सिरावै।
अमरामर कौं तुच्छ करै, सब ताप नसावै ॥

† उक्त पद (क) (च) (प) (ट) (त) पाँच-प्रतियों में नहीं है और न नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में है।

‡ उक्त पद (क) (य) प्रतियों में नहीं हैं, नागरी प्रचारिणीवाली प्रति में भी नहीं हैं।

+ उक्त पद और "प्रनत मनोहर करन चरन सरसोरुह पिय के, का घटि जैहै नाथ! हरत दुख हमरे जिय के" की अन्तिम-पदावली कुछ-कुछ एक सी है व तीन प्रतियों, अर्थात् (क) (प) (य) में उक्त पद है भी नहीं परन्तु विशेष प्रतियों में लिखा होने के कारण हमें इसका उल्लेख करना पड़ा। नागरी प्रचारिणी वाली प्रति में भी नहीं है।

[१६]

अजहूँ नाहिँ न कछु बिगर्‌यौ, रंचक पिय आवौ।
मुरली कौ जूठौ अधरामृत, आइ पियावौ ॥*

[१७]

१फनी-फनन पैं अरपे डरपे नैकु नाहिँ तब।
छतियनु पैं पग धरत, डरत कित कुंवर-कान्ह अब॥

[१८]

२जानति हैं हम, तुम जो डरत ब्रजराज-दुलारे।
कोमल-चरन-सरोज, उरोज कठोर हमारे॥

[१९]

३सनैं-सनैं पग धरिय, हमैं पिय निपट-पियारे।
४कित अटवी महँ अटत, गड़त तृन कूर्प-अन्यारे॥

पाठान्तर—

(क) १—फनी-फनन पर डरपे अरपे, नाहिन नैंकु तब।
छविलि-छातिन पग धरत, डरत क्यों कान्ह-कुँवर अब॥

(च) २—जानत हैं हम कुँवर-कान्ह ! ब्रजराज-दुलारे।

(छ) ,,—हम समुझीं यह तुम जु डरत-ब्रजराज-दुलारे।

(अ) ३—सनैं-सनैं धरिये पिय ! हमकौं अधिक पियारे।

(च) ,,—हरैं-हरैं पग धरिये, हमें ए अति ही पियारे।

(छ) ,,—हरैं-हरैं धरि पीय, हमहिँ तौ प्रान—पियारे।

(च) ४—कित अवनी मैं अटकत, अंकुर-कंकर न्यारे॥

(प) ,,—कित अटवी महि अड़त, गड़त तृन कुस अनियारे

(ट) ,,—हा ! अटवी मैं अटत, गड़त तृन कुलिस अन्यारे।

(त) ,,—कत अटवी महँ अटत, गड़त तृन कूट न न्यारे।

[२०]

जदपि परम-सुख-धाम, स्याम-पिय कौ लीला-रस।
तदपि तिनहिँ अवलोकन-बिनु, अकुलाइ गईं अस*

[२१]

ज्यौं चंदन, चंद्रमा, तपन तैं सीतल करही।
पिय-बिरही जे लोग, तिनहिँ लगि आग बिलरही ॥†

[२२]

छिन बैठत, छिन उठत, सुलोटत अति रज माहीं।
थोरे-जल ज्यौं दीन-मीन, आतुर अकुलाहीं ॥‡

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रास क्रीड़ायां "गोपिका-गीत उपालम्भोभवरसानं" नाम तृतीयोऽध्याय।+

*उक्त पद्य (क) प्रति और नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं है

† उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में नहीं है।

‡ "जदपि परम-सुख धाम स्याम-पिय कौ लीला-रस" से लेकर और उक्त छंद तक की पदावली छपी हुई प्रतियों में (च) (प) (ट) में ही मिलती है, अन्यत्र नहीं। नागरी-प्रचारिणीवाली प्रति में भी नहीं है।

+ मूल भागवत में इस अध्याय का नाम "गोपी-गीत" लिखा है और नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में "गोपिका-गीत उपालम्भ-वर्णन" नाम लिखा है।

चतुर्थ अध्याय

[१]

१इहिँ विधि प्रैम-सुधा-निधि,बढ़ गईं अधिक-कलोलैं
२बिह्वल ह्वै गईं बाल, लाल सौं अलबल-बोलैं ॥

[२]

३तब तिनहीं मैं प्रगट भए, नँद-नंदन-पिय यौं।
४दृष्टि-बंद करि दुरै, बहुरि प्रगटै नट-वर ज्यौं ॥

[३]

५पीत-बसन-बनमाल धरैं,(लएं) मंजुल-मुरली हथ ।
मंद-मंद मुसिकात, निपट मनमथ के मन-मथ ॥

पाठान्तर—

(क) १—बढ़ि गईं प्रैम-सुधा निधि मैं कछु अधिक कलोलैं ।
(च) ,,—इहि विधि प्रैम-सुधानिधि-मधि बढ़ि गई अधिक कलोलैं
(रा०) ,,—यह मधि प्रेम-सुधा-निधि मैं अति-बढ़ी कलोलैं ।
(च) २—ह्वै गईं बिह्वल (बिह्लल) बाल, लाल सौं अलबल बोलैं
(अ) ३—तिनहीं मैं तब प्रगट भए, नागर नगधर यौं ।
(रा०) ,,—तब तिनहीं मैं, तैं निकसे नँद-नंदन-पिय यौं ।
(अ) ४—बंद-दृष्टि करि दुरै, बहुरि प्रगटै नटवर त्यौं ।
(रा०) ,,—दृष्टि बंध कै डरै, बहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं ।
(रा०) ५—पीत-बसन मनमाल, बनी मंजुल-मुरली हथ ।
मंद मधुर तर हँसत, निपट मनमथ के मनमथ ।

[४]

१पियहिं निरखि तिय-वृन्द, उठे सब एकु बेर यौं।
२फिरि आएं घट प्रान, बहुरि जागति इन्द्री ज्यौं॥

[५]

३महा-छुधित की भोजन तैं ज्यौं प्रीति सुनीं हैं।
ताहू तैं सत-गुनी, सहस कै कोट-गुनीं हैं॥

[६]

४दौरि लिपटि गईं ललित-लाल, सुख कहत न आवै।
मींन उछरि ज्यौं पुलिन परे पैं पानी पावै॥*

पाठान्तर—

(च) १—देखि पिया त्रिय-वृन्द उठे, तब एकु बेर यौं।
(रा०) ,,—पियहिं निरखि तिय वृन्द उठीं सब इकै बार यौं
(च) २—आये पुनि घट प्रान, बहुरि उझकति इन्द्री ज्यौं।
(रा०) ,,—परिघट आए प्रान, बहुरि उझकत इन्द्री ज्यौं॥
(प) ३—भोजन सौं ज्यौं महा-छुधित की, प्रीति सुनी हैं।
तातैं हूँ सत-गुनीं, सहस औ कोटि—गुनीं हैं।
(पा) ,,—महा छुधित कौं जैसैं अन्न सौं प्रीति सुनी हैं।
ताहूतैं सतगुनी, सहस पुनि कोटि गुनी हैं॥
(च) ४—लिपटि गईं पुनि ललित-लाल, छबि कहति न आवै।
मींन उछरिकैं पुलिन परै, पुनि पानी पावै॥

*यद्यपि उक्त छंद (अ) (प) (त) प्रतियों में ही मिलता है जैसा कि पहले लिखा गया है, अतः यहाँ इसे उद्धृत किये बगैर कथानक का सिलसिला ठीक नहीं बैठता, इसलिये इसे उद्धृत करना पड़ा। नागरी-प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित प्रति में उक्त पद पूर्व-पद से आगे हैं और इसका पाठान्तर निम्न प्रकार है। यथा—

दौरि लपटि गईं ललित-पियहिँ कहत न बनि आवहि।
मीन उछरि जस परहिँ पुलहिं पुनि पावहि॥

[७]

[1]कोऊ चटपट झपटि जाइ, उर-वर सौं लपटी
[2]कोउ गर-लपटी कहति, भले जू कान्हर कपटी ॥

[८]

[3]कोउ नागर-नगधर की गहि रही दोउ-कर पटकी ।
ज्यौं नव-घन तैं सटकि, दामिनी, दाँमन अटकी ॥

[९]

[4]कोऊ पिय-भुज लटकि, मटकि रही नारि-नवेली ।
[5]जनु सुन्दर-सिंगार-विटप, लपटी छवि-बेली ॥*

पाठान्तर—

(क) १—कोऊ चटपट सौं कर लपटी, कोऊ उरवर सौं लपटी ।
(प) ,,—कोऊ करसौं लपटी धाइ, कोऊ उर सौं लपटी ॥
(रा०) ,,—कोउ चटपटि उर लपटी, कोउ करवर लपटी ।
गर सौं कोऊ लपटी कहति, तुम कान्हर कपटी ॥
(रा०) २—कोउ गरैं लपटी कहति, भलैं भलैं कान्हर-कपटी
(ना.प्र.) ३—कोउ नगधर-वर-पिय की, गहि-गहि परिकर पटकी
जनु नव-घन तैं मटकि, दामिनी घटा सौं अटकी ॥
(क) ४—कोउ पिय-भुज सौं मटकि, लटकि रही नारि-नवेली ।
(रा०) ,,—कोउ पिय-भुज लिपटाय, रही नव-नारि नवेली ।
(क) ५—जनु लपटी-सिंगार-विटप, सुन्दर-छवि बेली ॥
* इस पद्य (ग्र) प्रति में नहीं है ।

[१०]

१कोउ कौंमल पद-कमल, कुचन पैं राखि रही यौं।
२परम-कृपन-धन-पाइ, हिऐ सौं लाइ रहत त्यौं (ज्यौं)*

[११]

३कोऊ पिय कौ रूप, नैंन-मग उर-धरि ध्यावत।
४मधु-माँखी ज्यौं देखि, दसौं-दिसि अति-छबि पावत

[१२]

५ कोउ दसनन दै अधर-बिंब, गोबिन्दहिँ ताड़ति
६कोउ इक नैंन-चकोर, चारु-मुख-चंद निहारति ॥

पाठान्तर—

(च) १—कोऊ पद-कमल-कुचन-कौंमल बिच राखि रही यौं।
(रा०) ,,—कोउ कमल-पद कमल-कुचन-बिच राखि रही यौं ॥
(च) २—निधन-परम धन पाइ, हिए सौं लाइ रहति ज्यौं ॥
* उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं हैं।
(अ) ३—पिय कौ कोऊ रूप नैंन-भरि, उरधरि आवत।
(रा०) ,,—कोउ पिय-रूप नयन भरि उर मैं,धरि-धरि धावति।
(अ) ४—मधुर, मिष्ट ज्यौं वृस्टि दसौं-दिसि अति-छबि छावत।
(रा०) ,,—मधु-माँखी लौं डीठि दुहुँ दिसि, अति-छबि पावत ॥
† उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं हैं।
(अ) ५—दसन दाबि कोउ अधर-बिम्ब, गोबिंदहि ताड़त।
(रा०) ,,—कोउ दसननि दलि अधर-बिम्ब, गोबिंदहिँ ताड़त।
(अ) ६—करि कोऊ नैंन-चकोर लाल-मुख-चन्द निहारति ॥
(रा०) ,,—कोउ एक चारु-चकोर चखनि मुखचंद निहारति ॥
‡ उक्त पद्य (क) और (ट) प्रति में नहीं हैं।

[१३]

१कहुँ काजर, कहुँ कुंम-कुंम, कहुँ इक पीक-लीक घर ।
अस राजत व्रजराज कुँवर, कन्दर्प-दर्प हर ॥

[१४]

२बैठे सब पुनि पुलिन, परम-आनंद भयौ है ।
३छबिलिन अपनौं छादन, छवि सौं छाइ दयौ है ॥

[१५]

४एक-एक हरि-देव, सबन के आसन बैसे ।
किए मनोरथ पूरन, जिनके उपजे जैसे ॥*

[१६]

५ज्यौं अनेक जोगेसुर जिय में ध्यान धरत हैं ।
एक बेर ही एक-रूप ह्वै, सुख बितरत हैं ॥

पाठान्तर—

(रा०) १—कहुँ कहुँ कुंमकुंम, कहुँ कहुँ-पीक लीक वर ।
तहँ राजत नंद-नंद-कन्द, कंदर्प दर्प हर ॥
(क) २—बैठ जाइ पुलिन पै, परम-अनंद भयौ है ।
(ख) ,,—बैठे पुनि उहिं पुलिन परम-आनन्द भए हैं ।
(रा०) ३—छबिलीं अपने छादन छवि सौं बिछाइ दए हैं ॥
(अ) ४—एक-एक हरिदेवा सबहिं आसन पै बैसे ।
पूरन किए मनोरथ जाके उपजे जैसे ॥

* उक्त पद राधाकृष्णदास संपादित प्रति में नहीं है ।

(रा) ५—ज्यौं अनेक जोगीश्वर, हिय में ध्यान धरत हैं ।
एकहिं बेर रूप इक सब कौं सुख-बितरत हैं ॥

:क पद राधाकृष्णदास जी संपादित प्रति में नहीं है ।

[१७]

जोगी-जन वन जाइ, जतन करि कोटि-जनम पचि।
१अति-निरमल करि राखत, हिय में आसन रचि-रचि*

[१८]

२तौऊ तहँ नहिँ जात, नवल-नागर-सुन्दर-हरि।
३ब्रज-जुवतिन के सो अंवर बैठे अति-रुचि कर ॥

[१९]

४कोटि-कोटि ब्रह्मांड, जदपि एकहिँ ठकुराई।
पै ब्रज-देविन-सभा, साँवरे अति-छबि पाई ॥

पाठान्तर —

(रा०) १—अति निरमल करि-करि राखत रुचि हिय रुचि आसन रुचि।

* उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।

(च) २—कछु-छिन हूँ नहिँ जात, तहाँ नागर-सुन्दर हरि।
(रा०) ,,—कछु बिनात तहँ जात नवल नागर मोहन हरि ॥
(च) ३—ब्रज-जुवतिन के अंवर वैठे, सो अति-रुचि करि।
(रा०) ,,—ब्रज की तियन के अम्बर पर वैठे अति रुचि करि ॥

† "जोगी-जन वन जाइ, जतन करि कोटि-जनम पचि" से लेकर "तौऊ तहँ नहिँ जात नवल-नागर सुन्दर-हरि" ये दोनौं छंद (क) (च) (प) तीन प्रतियों में नहीं हैं।

(क) (ट) ४—कोट-कोट ब्रह्मांड और इकली ठकुराई।
ब्रज-देविन की सभा, साँमरे अति-छवि पाई ॥

[४]

१फिरि आए तिहिँ सुर-तरु-तर, सुन्दर गिरिवर-ध
आरंभौ अदभुत-सुरास, उहिँ कमल-चक्र पर।

[५]

२एक-काल ब्रज-बाल-लाल, तहँ चढ़े जोरि-कर।
३नैंकु न इत-उत होत, सबै निरतति बिचित्र-वर

[६]

४मनु दरपन सम अवनि, रवनि तापैं छवि देईं
५विलुलित कुंडल-अलक, तिलक झुकि झाँई लेईं

पाठान्तर—

(प) १—तब वा रातहि तेहि सुर-तरु तर, सुन्दर गिरिधर।
(च) ,,—आए पुनि तहँ सुन्दर-तरु-वर पिय गिरिधर—वर।
(रा०) ,,—फिर आए तिहि सुरतरु-तर मोहन गिरिवर—धर
आरम्भित अदभुत सुरास, उहि कमल-चक्र पर॥

(रा०) २—एक वार ब्रजबाल लाल, सब चढ़े जोर-कर।
(ट) ३—नमित न इत-उत होइ, सबै निरतैं विचित्र-वर॥
(रा०) ,,—नव तन इत उत होत, सबै निरतत विचित्र वर।
(अ) ४—मनि, दरपन से अवनि, रवनि ता पर छवि देहीं।
(व) ,,—पुनि दरपन सम अवनी, रवनी अति-छवि देहीं।
(रा०) ,,—मनि दर्पन सम अवनि, रमनि तापर छवि देहीं
विलुलें-कुंडल, अलकें, तिलक झुकि झाँकी लेहीं

(रा०) ५—विथुरित कुण्डल, अलक, तिलक झुकि झाँई लेहं
* उक्त पद (व) (प) (ट) तीन प्रतियों में नहीं है।

[७]

[1]कमल-करनिका मध्य, जु स्यामा-स्याम वनीं छवि।
[2]द्वै-द्वै गोपिन-बीच, यौं मौंहन लाल रहे फबि॥

[८]

[3]मूरत एक अनेक देखि, सोभा अदभुत अस।
[4]मंजु-मुकुर-मंडल मधि बहु-प्रतिबिंब होइ जस॥*

[९]

रतनावलि-मधि नील-मनी, अदभुत झलकै जस।
[5]सकल-तियन के संग, साँवरो-पिय सोभित अस॥

पाठान्तर—

(ड) १—कमल—कर्णिका मध्य, स्याम स्यामाजु वनीं छवि।
(रा०) २—द्वै-द्वै गोपियन बिच पुनि मण्डल माँहि लगे फबि।
(प०) ३—मूरनि एक अनेक लगत, अदभुत—सोभा अस।
(रा०) ४—अविकल दरपन-मण्डल माँहि विधु आनि परत जस
(प) ,,—मंजु-मुकुर-मंडल मधि, विधु-छवि आनि परति जस।
* उक्त पद्य (क) प्रति में नहीं है।
(अ) ५—सकल त्रियन के संग, साँवरो-पिय सोभै अस।
रत्नावलि-मधि नील-मनी, झलकै अदभुत जस—अथवा
(रा०)—सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।

† "कमल करनिका मध्य जु स्यामा-स्याम वनी छवि" से लेकर उक्त छंद तक (क) प्रति में नहीं हैं जो कि उचित प्रतीत होता है क्योंकि इससे कथानक का सिलसिला तो बिगड़ता ही है साथ ही पुनुरुक्ति दोष भी भासित होता है और शब्दावली भी विचारणीय है। उक्तछंद हासिये पर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा पीछे से लिखा मालूम होता है। हाँ छापे की सभी प्रतियों में (उक्त छंद) अवश्य मौजूद हैं सिर्फ मथुरा की लेथो की छपी को छोड़कर; अतः लाचार होकर हमें भी इनको लिखना पड़ा।

[१५]

¹चपल-तियन के पाछैं, आछैं विलुलित-बैंनी
²चंचल-रूप-लतनि-सँग डोलति ज्यौं अलि-स्रैंनी

[१६]

मोंहन-पिय की मलकन, ढलकन मोर-मुकुट की
सदाँ बसौ मन मेरे, फरकन पियरे-पट की

[१७]

³कमल-बदन पैं अलक छुटीं, कछु स्रम-कन झलक
सदाँ रहौ मन मेरे, मोर-मुकुट की ढलकनि

पाठान्तर—

(थ) १—छबिलि-तियन के आछैं पाछैं विलुलित-बैंनी ।
चंचल-रूप लतानि संग डोलति अति-सैंनी ॥

(न) २—चंचल रूप लतनि-सँग, डोलत जनु अलि सैंनी ।

* उक्त पद्य नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में उनसठ नंबर पर

(प) ३—बदन-कमल पे छुटित अलक, स्रम-कन कछु झलक

(गा०) ,,—कमल-बदन पर अलकनि कहुँ-कहुँ स्रम-कन झल
सदाँ बसौ मन मेरे, मंजु-मुकुट की लटक।

† उक्त पद्य (ह) प्रति मे नहीं है और सब में मौजूद है
"पुनिरुक्ति" का यहाँ भी दोष है, जो कि हमारी समझ में
आता । नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में इस पद प्रथम
आते हैं ।

[१८]

[1]कोऊ सखि कर-पकर, जु निरतति या छबि सौं तिय
मानौं करतल फिरति देखि, नट-लट्टू होत जिय ॥*

[१९]

[2]कोउ नाइक के भेद-भाव, लावन्य-रूप-बस।
[3]अभिनै करि दिखरावति अरु गावति पिय के जस+

पाठान्तर—

(अ) १—कोऊ सखी ! कर पकरत, निरतत यौं छबीली-तिय।
(च) ,,—सखी ! कोऊ कर पकरैं, निरतति या छबि सौं तिय।
(ट) ,,—कोऊ कर पकरैं निरतत, छबि सौं अति-प्रिय-तिय।
करतल फिरत देखि मानौं नट-लट्टू होति पिय॥
(प) ,,—कोऊ कर पैं अरप-तिरप, निरतत छबीली-तिय।
मानौं करतल फिरत देखि, अति-लट्टू होत पिय॥
(र०) ,,—कोऊ तहाँ कर बाँधि-नृत्य जब करन लगी तिय।
मनु करतल लट फिरत देखिकैं लट्टू होत पिय॥
(ह) ,,—कोउ सखि ! कर-पर तिरप बाँधि निर्तत नागर-तिय।
मानौं करन लट्टू फिरत, लखि लट्टू होत पिय॥
* उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में तैंतीस नंबर पर है।
(ट) २—नाइक सौं करि भेद-भाव, लावन्य-रूप सब।
करि अभिनै दिखरावति, गावति गुन पिय के जब।
(श) ,,—कोउ नायक के भेद-भाव लावन्य, रूप सब।
अभिनय करि दिखरावति, गावति गुन पिय के तब॥
(क) ३—दिखरावति अभिनय करि, गुन-गावति पिय के जस॥
+ यहाँ से क्रम, नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में सब प्रतियों के समान है।

[२०]

१तब नागर-नँदलाल, चाँहि कैं चकित होत यौं।
२निज-प्रतिबिंब-बिलास-निरखि,सिसु-भूलि परतज्यौं

[२१]

३रीझि परसपर वारित, अंबर, अभरन अँग के।
४जहँ के तहँ बनि रहत, सकल अदभुत-रँग-रँग के

पाठान्तर--

(अ) १—नव-नागर-नँदलाल, चाँहिं चित चकित होति यौं।
निज प्रतिबिंब निरखि भूलें, अटपटो-सिसू ज्यौं॥

(रा०) ,,—तब नागर नँदनंद निपट हीं, होत विवस अस।
निज प्रतिबिम्ब विलास, निरखि सिसु भूल रहत जस॥

(प) २—निज प्रतिबिंब विलासनि निरखें, सिसु भूलि रहति जौं
(च) ३—वारति रीझि परसपर, अभरन सब अँग-अँग के।
(ट) ,,—रीझि परसपर वारि देत, अंबर-अँग-अँग के॥
अबर तहाँ बनि रहति सबै, अदभुत-रँग-रँग के।

(रा०) ,,—रीझि परसपर वारत, अम्बर भूषन अँग के।
और नवहिं बनि रहत, तहाँ अदभुत रँग-रँग के॥

(च) ४—छिन औरें बनि रहति, आभरन नाना रँग के।
(प) ,,—अंबर निहि छिन बनति, तहाँ अदभुत-रँग-रँग के॥

[२२]

१कोउ मुरली-सुर-जुरलि, रँगीली रस हिँ बढ़ावति
कोउ मुरली कौं छेकि, छबीली अद्भुत-गावति ॥*

[२३]

२ताहि साँवरौ-छैल, रीझि हँसि लेति भुजन-भरि ।
३चुंबन करि सुख-सदन, बदन तैं दै तँबोल ढरि ॥+

पाठान्तर—

(प)१—कोऊ मुरली मौ जुरली, रसीली रस हिँ बढ़ावति ।
(रा०) ,,—कोउ मुरली सँग जुरली, अद्भुत रसहि बढ़ावति ॥
(च) ,,—कोउ मुरली-सुर-लएं, रँगीली रँगहि बढ़ावति ।
(य) ,,—कोउ मुरली रसबली, रसीली रसहि बढ़ावति ॥
(रा०) ,,—कोउ मुरली सँग रली(मिली)अली अति रसहिबढ़ावत
सुघर-पिया सँग-गावति, सुन्दर अति छबि पावत ॥

* उक्त पद से आगे नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में पुनः शृङ्खला में गड़बड़ है ।

(क) २—तबै साँवरौ-कुँवर, रीझि लै लेति भुजन-भरि ।
(रा०) ,,—ताहि साँवरो कुँवर, रीझि हँसि लेति भुजन भरि ॥
(क) ३—करि चुंबन सुख-सदन, बदन तैं देति मोल ढरि ॥

+ उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में दो पद के अनन्तर अर्थात् नम्बर चालीस पर है ।

[२०]

¹तब नागर-नँदलाल, चाँहि कैं चकित होत यौं।
²निज-प्रतिबिंब-बिलास-निरखि, सिसु-भूलि परत ज्यौं

[२१]

³रीझि परसपर वारित, अंबर, अभरन अँग के।
⁴जहँ के तहँ बनि रहत, सकल अदभुत-रँग-रँग के

पाठान्तर--

(अ) १—नव-नागर-नँदलाल, चाँहिँ छिन चकित होति यौं।
निज प्रतिबिंब निरखि भूलैं, अटपटा-सिसू ज्यौं॥

(रा०) १—नव नागर नँदनंद निपट हीँ, होत विवस अस।
निज प्रतिबिम्ब विलास, निरखि सिसु भूल रहत जस॥

(प) २—निज प्रतिबिंब बिलासनि निरखैं, सिसु भूलि रहति ज्यौं
(च) ३—वारति रीझि परसपर, अभरन सब अँग-अँग के।
(ट) ३—रीझि परसपर वारि देत, अंबर-अँग-अँग के॥
अवर तहीं बनि रहति सबैं, अद्भुत-रँग-रँग के।

(रा०) ३—रीझि परस्पर वारत, अम्बर भूषन अँग के।
और तबहिँ बनि रहत, तहाँ अद्भुत रँग-रँग के॥

(न) ४—जिन ठौरें बनि रहति, आभरन नाना रँग के।
(.) [illegible] ...भुत-रँग-रँग के॥

[22]

[1]कोउ मुरली-सुर-जुरलि, रँगीली रस हिं बढ़ावति
कोउ मुरली कौं छेकि, छबीली अदभुत-गावति ॥*

[23]

[2]ताहि साँवरौ-छैल, रीझि हँसि लेति भुजन-भरि ।
[3]चुंबन करि सुख-सदन, बदन तैं दै तँबोल ढरि ॥+

पाठान्तर—

(प)१—को ऊ मुरली सों जुरली, रसीली रस हिं बढ़ावति ।
(रा०) ,,—कोउ मुरली सँग जुरली, अदभुत रसहिं बढ़ावति ॥
(च) ,,—कोउ मुरली-सुर-लएं, रँगीली रँगहिं बढ़ावति ।
(य) ,,—कोउ मुरली रसबली, रसीली रसहिं बढ़ावति ॥
(रा०) ,,—कोउ मुरली सँग रली(मिली)अली अति रसहिंबढ़ावत
सुघर-पिया सँग-गावति, सुन्दर अति छबि पावत ॥

* उक्त पद से आगे नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में पुनः शृंखला में गड़बड़ है ।

(क) २—तबै साँवरौ-कुँवर, रीझि लै लेति भुजन-भरि ।
(रा०) ,,— ताहि साँवरो कुँवर, रीझि हँसि लेति भुजन भरि ॥
(क) ३—करि चुंबन मुख-सदन, बदन तैं देति मोल ढरि ॥

+ उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में दो पद के अनन्तर अर्थात् नम्बर चालीस पर है ।

[२४]

१जग मैं जे संगीत-रीति, सुर-नर रीझति जिहिँ ।
२सो ब्रज-तिय के सहज-गान, आगम गावत तिहिँ ॥

[२५]

३राग-रागिनी-सम जिनकौ, बोलिबौ सुहायौ ।
सो किन पैं कहि आवै, जो ब्रज-देविन गायौ ॥*

[२६]

४जो ब्रज-देवी निरतति, मंडल-रास महा-छबि ।
५सो रस कैसैं बरनि सकै, ऐसौ है को कबि ॥+

पाठान्तर—
(अ) १—जे जग मैं संगीत-गीत, सुर-मुनि रीझैं जिहि ।
(ब) ,,—जो जग है, संगीत, निरत, सुर, नर रीझतु जिहि ॥
ब्रज-तिय कैं सो सहज, निगम गावत आगम तिहि ।
(स) २—सो ब्रज-तियनि के सहज गमन, गावति आगम तिहि ।
(रा०) ,,—जग मैं जो सङ्गीत रीत, सुर-मुनि रीझत जिहि ।
सो ब्रज-तियन कौ सहज, गवन अद्भुत गावत तिहि
(ब) ३—राग-रागिनी सौं, जिन कौ बोलबौ सुहायौ ।
कापैं सो कहि आवै, ब्रज-देविनि जो गायौ ॥
(रा०) ,,—राग-रागिनी समुझन कौ, बोलिबो सुहायौ ।
सो कैसे कहि आवै, जो ब्रज-देविन गायौ ॥

* इस पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में सैंतालीस नंबर पर है

(ब) ४—ब्रज-देवी यह निरतत, मंडल करि जु महा-छबि ।
सो रस कैसैं बरनि सकै, जग ऐसौ को कबि ॥
(रा०) ५—सो रस कैसे बरनि सकै, इह ऐसौ को कवि ॥

+ यह पद (क) (ब) दो प्रतियों में नहीं है और छापे की प्रतियों में यह पद, पूर्व पद के आगे है ।

[२७]

[1]ग्रीव-ग्रीव भुज मेलि, केलि-कमनीय बढ़ी-अति ।
[2]लटकि लटकि मुरि-निरतति, कापैं कहि आवनिगति

[२८]

[3]छबि सौं निरतनि, लटकनि, मटकनि मंडल-डोलनि
कोटि-अमृत-सम मुसकनि, मंजुल ता-थेई-बोलनि ॥

[२९]

[4]कोउ गावत सुर-लै-सौं, लै करि तान नई-नई ।
सब-संगीतन छेकि, सु-सुन्दरि गान करत भई ॥*

पाठान्तर—

(ट) १—पिय-ग्रीवा कर मेलि, केलि-कमनीय बढ़ी-अति ।
निरतति लटकि-लटकि कैं, कापैं कहि आवै गति ॥
(रा०) २—लटकि-लटकि निर्तति पिय सौं, मनमथ मन्थन-गति ।
(अ) ३—निरतत छबि सौं लटकत, मटकत मंडल डोलत ।
कोटि अमृत सम मुसकन, मंजुल ता-थेई-थेई बोलत ॥
(रा०),,—कबहुँ परस्पर निर्तत-लटकनि मण्डल डोलनि ।
कोटि अमृत मुसकनि, मंजुल तत-थेई बोलनि ॥
(प) ४—कोउ उत तैं अति-गावति, सुर-लय, तान नई-नई ।
(य) ,,—कोउ उन्नत-उत गावति, सुलफ लै तान नई-नई ।
संगीतनु सब छेकैं, सुन्दरि गान करति भई ॥
(रा०) ,,—कोउ तिनहूँ तैं अधिक अमिस्रित, सुर जुत गति नई ।
सब कौं छैंकि छबीली, अद्भुत गान करत भई ॥
(ह) ,,—कोउ उनतैं अति गावत, सुरलय-लेत तान नई ।
सब सङ्गीत छकैं, जु सुन्दरी गान करत भई ॥

* उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर अड़तीस पर है

[३०]

१अप-अपनी गति-भेद, सबै निरतनि लागीं जब
२मोहे गँधरब ता-छिन, सुन्दरि-गान कियौ तब ॥*

[३१]

३भुज-दंडन सौं मिली मंडली निरतति अति-छवि
४कुंडल कच सौं उरझे, मुरझे, तहँ बड़रे-कवि ॥†

पाठान्तर—

(अ) १—अपनी निज-गति भेदन सौं निरतन लागीं तव।
(रा०) ,,—अपन-अपनी जत गती भेद नर्तन लागनि जब।
(ह) ,,—अप-अपनी जाति भेद तहँ नृर्तन लगीं सब।
(,,) २—गँधरब मोहे तत छिनु, सब मिलि गान कियो जब।
(क) ,,—तिहि-छिनु मोहैं गँधरब, सुन्दर-गान करत जब॥
(रा०) ,,—अलि गँधर्व-नृप से मब सुन्दर गान करत तब॥
(ह) ,,—गँध्रब मोहे ता छिन, सुन्दरि गान करत जब॥

* उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर सत्ताइस पर

(अ) ३—भुज-दंडन सौं मिलति ललित-मंडल निरतति-छवि।
(रा०) ,,—गण्डन सौं मिलि ललित गण्ड मण्डल मण्डित छवि
(ह) ,,—भुज दण्डनि सौं मिलति ललित मण्डल-निर्तत छवि।
(व) ४—कच कुंडल सौं उरझे. सुरझे नाहिँ बड़रे-कवि॥
(म) ,,—कुण्डल सौं कच उरझे मुरझे जहँ बड़रे कवि॥
(य) ,,—कुण्डल कचसौं उरझि मुरझि नहिँ बरनि सकै कवि

† उक्त पद नागरी-प्रचारिणीवाली प्रति में नम्बर पैंतालीस पर

[३२].

१पियहि मुकट की लटकनि, मटकनि, मुरली रव अस
२कुहुँकु-कुहुँकु जनु नाँचत, मंजुल-मोर भरे-रस ॥*

[३३]

३सिर तैं सुमन सु-देस, जु वरसत अति-आँनद-भरि
४जनु पद-गति पैं रीझि, अलक, पूँजति फूलन करि+

पाठान्तर—

(प) १—पिया-मुकुट की मटकन, लटकन, मुरली-रव अस।
(ट) ,,—पिय के मुकट की लटकनि, मुरली-नाँद-भरी अस।
(रा०) ,,—पिय के मुकुट की लटकनि मटकनि मुरली-रव अस।
(ट) २—नाँचति कुहकि-कुहकि ज्यों मंजुल-मोर-सोर-जस॥
(,,) ,,—कुहकि-कुहकि मनो (पै) नाचत मंजुल मोर भर्यों रस।
(ह) ,,—कुहकि कुहकि पै वरसति मंजुल सोर भर्यो अस॥
* उक्त पद नागरी-प्रचारिणीवाली प्रति में नम्बर छत्तीस पर है।

(अ) ३—सीसहिं कुसुमन वरखत, सुन्दर-आनँद अति करि।
मनु पद-गति पर रीझि, अलक पूँजैं फूलन-भरि॥
(रा०) ,,—सिरतैं कुसुम जु सुन्दर वरसत अति आनँद भरि॥
(ह) ,,—सींचत सुभग सुवेसन वरसत अति अनंद भरि।
(,,) ४—जनु पद गति पर रीझि, अलक पूँजति पुहुपनि करि॥

+ उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में नम्बर वत्तीस पर है।

[५५]

१जमुना-जल मैं दुरि मुरि, कामिनि करति कलोलैं।
२मनु नव-घन के मध्य, दामिनि दमकति डोलैं ॥

[५६]

३कमलन तजि-तजिअलि-गन,मुख कमलनआवनजब
४छबिहिँ छबीली-बाल, छुपति जल मैं बचकति तब

[५७]

५ कबहूँ मिलि सब बाल, लाल-छिरकति हैं छवि अस
६मनसिज पायौ राज, आज अभिषेक होति-जस॥

पाठान्तर—

(क) १—श्री-जमुना जल दुरि-दुरि कामिनि करत विलोलैं।
(रा०) ,,—जल जमुना में दुरि मुरि करत कामिनी जु किलोलैं।
(छ) २—नव-घन के जनु भीतर दामिनि दमकति डोलैं॥
(प) ,,—नव-घन भीतर जनु दामिनि, अति दमकति डोलैं॥
(रा०) ,,—जनु घन भीतर भीतर ससिगन तारे तरि डोलैं॥
(ह) ,,—मानों नव गन मध्य दामिनी दामिन डोलै॥
(अ) ३—कमलन तजि कैं अलिगन, मुख-कमलन ढिंग आवत।
(रा०) ,,—अलगन कमलनि तजि सुमुख कमलनि पर आवत॥
(प) ४—छवि सौं छबीलो छैन-भैंटि तत छिनहिँ उड़ावत।
(भ) ,,—छपत छबीली-बाल, हाल जल मैं जु दुरावत॥
(रा०) ,,—छवि सौं छवीले छैल-भेंटि तेहि छिनहिँ उड़ावत॥
(अ) ५—कबहुँक सब मिलि वाल, लाल जल छिरकत छवि अस
(स) ६—पायौ मनसिजराज, राज-अभिषेक होत जस॥

[५८]

१तिनकी सुन्दर-कांति-भाँति, मनमोहन भावै।
२बाल-वैस की छबि, कबि पैं कछु कहति न आवै॥

[५९]

३ भीज्जि बसन तन-असन, निपट-छबि अंकित ह्वै अस।
४नैननि कैं नहिँ बैन, बैन कै नैन नाहिँ जस॥

[६०]

५ नीर-निचोरति जुबतिननि देखि अधीर भए मनु।
६तन-बिछुरनि की पीर, चीर रोवति अँसुवन जनु॥

पाठान्तर—

(रा०) १—निकसी सुन्दरि भाँति कान्ति मन ही मन भावै।
(श) २—बाल-बैस छवि जैसे कवि पै कही न आवै॥
(ह) ,,—बाल वैस छवि कवि पैं कबहूँ कहत न आवै।
(अ) ३—बसन भींजि तन-लिपटि, निपट-छबि अंकित हैं अस।
(ग) ,,—भींजे-बसनन लिपटनि की छवि अंकित भई अस॥
(च) ,,—भींजे बसन तन लपटन अद्भुत-छवि का कहि है।
(रा०) ,,—भींजि वसन तन लपटि निपट ही अद्भुत छवि सब।
(म) ४—नैनन कौं नहिँ वैन, वैन कौं नैननि नहिँ है॥
(रा०) ,,—नैननि के नहिँ बैन, बैन के नहिन नैन तब॥
(रा०) ५—रुचिर निचोरनि चुवति नीर लखि भये अधीर तनु॥
(च) ६—तन बिछुरन की पीर, चीर (धीर) अँसुअन रोवत जनु॥

[६१]

¹निरखि परस्पर छबि सौं, बिहरति प्रैम-मदन-भरि
²प्रकृति-बाम की छाती, अजहूँ धरकति धरि-धरि*

[६२]

³तब इक द्रुम-तन चितै, कुँवर-बर आग्या दीनीं।
⁴निरमल-अंबर, भूषन, तिन तहँ बरखा-कीनीं ॥

[६३]

⁵अपनी-अपनी रुचि के, पहिरे-बसन बनीं छब।
⁶जगत-मौंहनी जिती, तिती ब्रज-तिय मौंहनि सब

पाठान्तर —

(रा०) १--कबहुँ परस्पर छबि सौं भाँखत, प्रेम मदन भरि।
(अ) २--प्रकृति-बाम की छाती अजहूँ धरकत जिनके डरि ॥
(ह) ,,--प्राकृत काम छाति अजहूँ धरकत जाके डरि।
* उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में नंबर इक्यावन पर है
(रा०) ३--तब इक द्रुम तन चितै, कुँवर अस अज्ञा दीनी।
(स) ४--निरमोलक अम्बर, भूषन, तिहिँ बरषा कीनी ॥
(?) ५--रुचि अपनी-अपनी के पहरे बसन-असन छब।
(रा०) ,,--अप-अपनी रुचि के पहिरे छबि परत न बरनी।
(ख) ६--जगत मौंहिनी जे तिनकी ब्रज-तिय मौंहनि सब ॥
(च) ,,--जग मैं जे मौंहन हैं तिनकी ब्रज मौंहनि सब।
(रा०) ,,--जग मौंहिनी जिती तिनकी मोहिनि ब्रज-घरनी।
(ह) ,,--जग में ए मोहन आए तिनकी ब्रज-तिय मोहिनी सब ॥

[६४]

१सरस-सरद की जोति, मनोहर जगमग-राती ।
२खेलत रास रसिक-बर, प्रति छिन नई-नई-भाँती ॥

[६५]

३ब्रह्म-मुहूरत कुँवर-कान्ह-बर घर आए जब ।
४गोपन अपनी गोपों, अपने-ढिंग जानो तब ॥*

फलस्तुति वर्णन

[६६]

५नित्त रास-रस-मत्त, नित्त गोपी-जन-बल्लभ ।
६नित्त निगम जो कहत, नित्त नव-तन अति-दुल्लभ

पाठान्तर—

(अ) १—यहै सरद की जोती मनोहर जगमग-राती ।
(ट) ,,—ऐसैं हा जेतिक परम-मनोहर सरद हि राती ।
(रा०) ,,—ऐसैं ही जोति सरद की परम-मनोहर रातैं ।
(ढ) २—खेलत रास रसिक-पिय, दिन-दिन नई-नई भाँती ॥
(रा०) ,,—क्रीड़त हैं पिय रसिक सु दिन-दिन अन-अन भाँतैं
(क) ३—ब्राह्म-महूरत कान्ह-कुँवर घर आए गृह जब ।
(रा०) ,,—ब्रह्म-मुहुरति कुँअरि कान्ह,निज(सब) घर आए तब
(म) ४—गोपन अपनी गोपी, अपने ढिग मानी तब ।
(रा०) ,,—गोपनि अपनी गोपी, अपने ढिग पाईं सब ॥
* उक्त पद नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में पूर्व पदों से आगे
(क) ५—नित्य रास-रस मत्त, नित गोपी-जन-बल्लभ ।
(ग) ६—नित्य निगम जो कहियतु, नित-नौतन तन दुरलभ ॥

[६७]

¹यह अदभुत-रस-रास कहत कछु कहि नहिँ आवै
सेस सहस-मुख गावै, अजहूँ पार न पावै ॥*

[६८]

²सिव मन-ही-मन ध्यावैं, काहू नाहिँ जनावै।
³सनक, सनन्दन, नारद, सारद, अति-मन-भावै ॥

[६९]

⁴जद्यपि हरि-पद-कमल, जु कमला सेवति निस-दिन
तद्यपि यह रस सपने, कबहूँ नहिँ पायौ तिन ॥

पाठान्तर—

(र) १—इहि अदभुत सुख-रास, महा-छवि कहत न आवै।
(प) ,,—अदभुत यह रस-रासि, महा-छवि कहत न आवत।
सेस सहस-मुख गावत, तौहू अंत न पावत ॥

*"मंजुलि-अंजुल भरि-भरि पिय पै तिय जल-मेलत" से लेकर उक्त पद्य तक की पदावली (क) (प) प्रतियों में नहीं है। और नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में उक्त पद कुछ पाठ भेद के साथ नम्बर चालीस पर दिया है। यथा—

अदभुत रस रह्यो रास कहत कछु नहिँ कहि आवै।
ज्यों मूँकै रस को चसको मन ही मन भावै ॥

(क) २—सिव-मुनि नित ही ध्यावैं, कछुक काहू न जनावै।
(प) ,,—सिव अजहूँ मन ध्यावैं काहू नाहिँ जनावैं।
(प) ३—सनक-सनंदन, नारद, सारद, अति-हिय-भावे।
(रा०) ४—जदपि रमा रमनी कमनी, पद सेवत निस दिन।
यह सुख अपने सपने, कबहूँ नहिँ देख्यो दिन ॥

[७०]

ब्रज अजहुँ रज-बाँछित, सुन्दर वृन्दावन की।
¹सोऊ तनकि न पावत, सूल मिटति नहिँ तन की ॥

[७१]

बिनु अधिकारी भएं, नाहिँ वृन्दावन सूझै।
रैनु कहाँ तैं सूझै, जब-लगि वस्तु न बूझै ॥

[७२]

²निपट-निकट घट मैं जो अंतरजामी आही।
विषै-विदूषित-इन्द्री, पकरि सकैं नहिँ ताही ॥

[७३]

³जो इहि लीला हित सौं गावै, सुनें सुनावै।
⁴प्रैम-भक्ति सोई पावै औ सब के जिय भावै ॥*

पाठान्तर—

(अ) १—पावत तनक न सोऊ, सूल मिटत ना मन की ॥
(रा०) २—निपट निकट घट में ज्यौं अन्तरजामी आही।
(अ) ३—इहि लीला जो हित सौं, गावै और सुनावै।
(रा०) ,,—जो यहि लीला हित सौं गावै सीखै सुनै सुनावै।
(स) ,,—जो इहि लीला गावैं, हित सौं सुनैं सुनावैं ॥
(रा०) ४—भक्ति, प्रेम सोई पावै पुनि सबके मन भावै ॥
(ह) ,,—प्रेम भगति सो पावै अरु सब के हिय भावै।

* उक्त पद का पाठ भेद जो (जैसा कि ऊपर उद्धृत किया है) ऐसा ही नागरी-प्रचारिणी वाली प्रति में भी है। पर यह

[७४]

१प्रेम प्रीति सौं जो कोउ गावै, सुनैं, धरै-हिय ।
भक्ति-प्रेम तिहिँ देति दया करि, नव-नागर-पिय ॥*

[७५]

२हीन स्रद्धा, निन्दक, अधर्म रति, धरम बहिर-मुख ।
३तिनसौं कबहुँ न कहै, कहै तौ नाहिँ लहै सुख ॥

[७६]

४नैन-हींन जो नाइक, ताकौं नव-नागरि जस ।
५मँद हँसनि, सु-कटाच्छ लसनि कौ का जानैं रस॥ऽ

[७७]

६भक्त-जनन सौं कहै, जिन्हैं भागवतहिँ धरम-बल।
ज्यौं जमुना के मींन, लींन नित रहत जमुन-जल ॥

पाठान्तर—

(रा०) १—जु कोउ प्रीति सों गान करै, अति सुनै गुनै हिय ।
प्रेम-भगति तिहि देहिँ, दया करि हरि नागर पिय ।

* उक्त पद्य (क) (प) (ट) (य) प्रतियों में नहीं है ।

(श्र) २—स्रद्धा-हीन अधरमी, नास्तिक-धरम-बहिर-मुख ।

(क) ,,—निन्दक, स्रद्धा-हीन, अधरमी हरि-धरम-बहिर-मुख ।

(रा०) ,,—हीन, असर्धक, निन्दक, नास्तिक धरम-बहिर्मुख ।

(स) ३—तिन सों कबहुँ न कहौ कहौ तौ लहौ नहिँ सुख ।

(रा०) ४—नैन-हीन के हेत नयन नागरि-नारी जस ।

(ह) ५—मन्द-हँसनि सुकटाच्छ लसनि वह का जानै रस ॥

ऽ उक्त पद्य (क) (च) (प) प्रतियों में नहीं है ।

(रा०) ६—भगत जनन सौं कहौ जिनकैं भागवत धरम बल ।

[७८]

[1]जदपि सप्त-निधि मेदिनि जमुना निगम-बखानैं ।
[2]ते तिहि धारहिँ धार रमत, जल छुवत न आनैं ॥

[७९]

[3]रसिक जनन के संग रहै, हरि-लीला गावै ।
[4]परम-कान्त, एकान्त प्रेम-रस तब ही पावै ॥*

[९०]

[5]इहि उज्जल रस-माल, कोटि जतनन करि पोई ।
[6]सावधान ह्वै पहिरौ, बरु तोरौ मति कोई ॥

पाठान्तर—

(रा०) १—जदपि सपत-निधि भेदक जमुना निगम बखानहिँ ।
(य) २—सो तिहि धारहि धारि रमत जल छुवै न आनैं ॥
(रा०) २—ते तिहि धारहि धार रमत छुमत न जल आनहिँ ।
(रा०) ३—हरि दासन को संग करै हरि लीला गावै ॥
(म) ४—परम कान्ति एकान्त भगति-रस तौ (सोइ) मल पावै ।
* उक्त पद्य (अ) (च) (ट) (य) प्रतियों में नहीं है ।
(म) ५—उज्जल-रस-मनि-माला कोटि जतन कै पोई ।
(ट) ६—सावधान ह्वै-फेरौ, तोरौ जिनि कोई ॥

[९१]

१स्रवन, कीरतन, ध्यान-सार, सुमिरन कौ है पुनि।
२ग्यान-सार, हरि-ध्यान-सार, श्रुति-सार, गुही गुनि

[९२]

३अघ-हरनी, मन-हरनी, सुन्दर-प्रेम-वितरनी।
४"नंददास" के कंठ बसौ, नित-मंगल-करनी॥

इति श्रीमद्भागवते महा-पुराणे "दशमस्कन्धे रास-क्रीड़ायां" नन्ददासकृतो पञ्चमोऽध्यायः।*

पाठान्तर—

(अ) १—स्रवन-कीरतन-सार, सार सुमरन कौ है पुनि।
(ट) ,,—उन करि पुनि तन-सार, सार सुमरन कौ पुनि-पुनि।
(रा०) ,,—श्रवन सार, कीर्तन को सार सुमिरन को सार पुनि।
(च) २—ग्यान सार औ ध्यान-सार, सब-सार यहै गुनि॥
(प) ,,—सब सारन को सार-ध्यान-हरि जानि गुथी गुनि॥
(रा०) ,,—ज्ञानसार, विज्ञानसार, सतसार गहति गुनि॥
(अ) ३—मन हरनी-अघ-हरनी, सुन्दर-प्रैम-वितरनी।
(क) ,,—अघ-हरनी, हरनी-मन, सुन्दर-प्रैम वितरना॥
कंठ बसौ नित "नंददास" के मंगल करनी॥
(रा०) ,,—मन हरनी, कलिमल-हरनी भव-जल-निधि तरनी।
(प) ४—बसौ कंठ नित "नंददास" के मंगल-करनी॥
* उक्त अध्याय का नाम "श्रीमद्भागवत" में 'रासक्रीड़ा वर्णन' लिखा है।

राग—बिलावल

चलहु राधिके सुजान ! तेरे हित गुन-निधान;
रास रच्यौ कुँवर-कान्ह, तट कलिन्दी-नंदनी ।
निरतति जुवती-समूह, रास-रंग अति कुतूह;
बाजति रस मुरलिका, अति-अनंदनी ॥
बंसीबट निकट जहाँ, परम-रमन-भूमि तहाँ;
सकल-सुखद बहति मलय-बायु-मंदनी ।
जाती-ईसर-बिकास, कानन अति-सै सुबास;
राका-निसि-सरद-मास, बिमल-चंदनी ॥
"कुंभन दास" प्रभु निहारि, लोचन-भरि घोष-नारि;
नख-सिख सौन्दर्य सीम, दुख-निकंदनी ॥*

×

निरतति राधा-नंद-किसोर ।
ताल, मृदंग सहचरी बजावति, बिच-बिच मुरली कौ कल-घोर ॥
उरप, तिरप पग धरत धरनि पै, मंडल फिरत भुजन-भुज-जोर ।
सोभा-अमित बिलोकि "गदाधर" रीझि-रीझि डारत तृन-तोर ॥

राग—टोड़ी

सुनौं हो स्याम ! इक बात नई ।
आज रास राधा अविलोक्यौं, मेरे मन इहि फूल भई ॥
हँसि-बोलन, डोलन, बन-बिहरन, वे-चितवन न जात चितई ।
कौन कहै वृषभाँनु-नंदनी, प्रगट भई मनौं मदन जई ॥

---

* इस पद में एक तुक (लाइन) कम है ।

तुम सम नैंन, बैंन तुमहीं सम, तुम सम आँनद-केलि-मई।
तिहारौ रूप धरि तिहारी हीं सौं, तुमहिं परसि भई तुमहीं मई॥
माँथैं मुकुट, पीतपट, मुरली, वनमाला छबि-छाई रई।
रंचक-भेद रह्यौ या वन मैं, औरु सकल-छवि पलट लई॥
तिय-आलिंगन, पिय अवलंबन, पिय-कौं हँसि कैं अंक दई।
फिरिचितवनिऔमुरि-मुसिक्यावनि, उघटनिमिस-करि नृत्य-ठई॥
इहि कौतुक अनूप मन-मौंहन, मनौं चोप रस-बेलि छई।
"सूरदास" प्रभु के उर परसत, ललित वलित वलिहारि गई॥

×

रास-मंडल मैं बन-ठन माधौ गति मैं—गति उपजावै हो।
कर-कंकन झनकार मनोहर, प्रमुदित बैंनु-बजावै हो॥
स्याम-सुभग-तन पैं दचिर्छन कर, कूजत चरन-सरोजै हो।
अवला-बृंद अवलोकत हरि-मुख, नैंन-विकास मनोजै हो॥
नील-पीत-पट चलत चारु नट, रसमै नूपुर कूजै हो।
कनक-कुंभ-कुच-बीच पसीना, मनुहर मौंतिन पूँजै हो॥
हेम-लता तमाल अवलंबित, सीस मल्लिका फूली हो।
कुंचित-केस, बीच अरुझाने, मनु अलि-माला भूली हो॥
सरद-विमल निस-चंद विराजत, क्रीड़त जमुना-कूलैं हो।
"परमानंद स्वामी" कौतूहल, देखत सुर-तर भूलैं हो॥

×

विसद-कदंब सघन-वृन्दावन, रच्यौ रास तरनि-तनया-तट।
सरद-निसा-उड़पति उजियारी, पूर्‌यौ नाद-मुरली नागर-नट॥
स्रवन-सुनत्ति चली ब्रज-सुन्दरि, साजि-सिंगार पैहैर भूषन-पट।
अति-हुलास, कुमुदिनी-प्रफुल्लित, निरखि लाल ठाड़े बंसी-बट॥
मंडल-मधि नाँचति पिय-प्यारी, गावत सुर टोड़ी-तान बिकट।
"दाससखी" देखति नैंननि भरि, वारि-फेरि डारौं कोटि-मदन-भट

राग—बिलावल

चलहु राधिके सुजान ! तेरे हित गुन-निधान;
रास रच्यौ कुँवर-कान्ह, तट कलिन्दी-नंदनी।
निरतति जुवती-समूह, रास-रंग अति कुतूह;
बाजति रस मुरलिका, अति-अनंदनी ॥
बंसीबट निकट जहाँ, परम-रमन-भूमि तहाँ;
सकल-सुखद बहति मलय-वायु-मंदनी।
जाती-ईसर-बिकास, कानन अति-सै सुबास;
राका-निसि-सरद-मास, बिमल-चंदनी ॥
"कुंभन दास" प्रभु निहारि, लोचन-भरि घोष-नारि;
नख-सिख सौन्दर्य सीम, दुख-निकंदनी ॥*

×

निरतति राधा-नंद-किसोर।
ताल, मृदंग सहचरी बजावति, बिच-बिच मुरली कौ कल-घोर ॥
उरप, तिरप पग धरत धरनि पैं, मंडल फिरत भुजन-भुज-जोर
सोभा-अमित बिलोकि "गदाधर" रीझि-रीझि डारत तृन-तोर

राग—टोड़ी

सुनौं हो स्याम ! इक बात नई।
आज रास राधा अविलोक्यौ, मेरे मन इहि फूल भई ॥
हँसि-बोलन, डोलन, बन-बिहरन, वे-चितवन न जात चितई।
कौन कहै वृषभानु-नंदनी, प्रगट भई मनौं मदन जई ॥

* इस पद में एक तुक (लाइन) कम है।

तुम सम नैंन, बैंन तुमहीं सम, तुम सम आँनद-केलि-मई।
तिहारौ रूप धरि तिहारी ही सौं, तुमहिं परसि भई तुमहीं मई ॥
माँथैं मुकुट, पीतपट, मुरली, वनमाला छवि-छाई रई।
रंचक-भेद रह्यौ या वन मैं, औरु सकल-छवि पलट लई ॥
तिय-आलिंगन, पिय अवलम्बन, पिय-कौं हँसि कैं अंक दई।
फिरिचितवनिऔमुरि-मुसिक्यावनि, उघटनिमिस-करि नृत्य-ठई
इहि कौतुक अनूप मन-मौंहन, मनौं चोप रस-बेलि छई।
"सूरदास" प्रभु के उर परसत, ललित वलित वलिहारि गई ॥

×

रास-मंडल मैं वन-ठन माधौ गति मैं—गति उपजावै हो।
कर-कंकन झनकार मनोहर, प्रमुदित वैंनु-वजावै हो ॥
स्याम-सुभग-तन पैं दचिह्नन कर, कूजत चरन-सरोजै हो।
अवला-वृंद अवलोकत हरि-मुख, नैंन-विकास मनोजै हो ॥
नील-पीत-पट चलत चारु नट, रसमै नूपुर कूजै हो।
कनक-कुंभ-कुच-बीच पसीना, मनुहर मौंतिन पूँजै हो ॥
हेम-लता तमाल अवलंबित, सीस मल्लिका फूली हो।
कुंचित-केस, वीच अरुझाने, मनु अलि-माला भूली हो ॥
सरद-विमल निस-चंद विराजत, क्रीड़त जमुना-कूलैं हो।
"परमानंद स्वामी" कौतूहल, देखत सुर-तर भूलैं हो ॥

×

विसद-कदंब सघन-वृन्दावन, रच्यौ रास तरनि-तनया-तट।
सरद-निसा-उड़पति उजियारी, पूर्यौ नाद-मुरली नागर-नट ॥
स्रवन-सुनति चलीं व्रज-सुन्दरि, साजि-सिंगार पैहैर भूषन-पट।
अति-हुलास, कुमुदिनी-प्रफुल्लित, निरखि लाल ठाड़े वंसी-वट ॥
मंडल-मधि नाँचति पिय-प्यारी, गावत सुर टोड़ी-तान विकट।
"दाससखी" देखति नैंननिभरि, वारि-फेरि डारौं कोटि-मदन-भट

राग—बिलावल

चलहु राधिके सुजान ! तेरे हित गुन-निधान;
रास रच्यौ कुँवर-कान्ह, तट कलिन्दी-नंदनी ।
निरतति जुवती-समूह, रास-रंग अति कुतूह;
बाजति रस मुरलिका, अति-अनंदनी ॥
बंसीबट निकट जहाँ, परम-रमन-भूमि तहाँ;
सकल-सुखद बहति मलय-बायु-मंदनी ।
जाती-ईसर-बिकास, कानन अति-सै सुबास;
राका-निसि-सरद-मास, विमल-चंदनी ॥
"कुंभन दास" प्रभु निहारि, लोचन-भरि घोप-नारि;
नख-सिख सौन्दर्य सीम, दुख-निकंदनी ॥*

×

निरतति राधा-नंद-किसोर ।
ताल, मृदंग सहचरी बजावति, बिच-बिच मुरली कौ कल-घोर ।
उरप, तिरप पग धरत धरनि पैं, मंडल फिरत भुजन-भुज-जोर ।
सोभा-अमित बिलोकि "गदाधर" रीझि-रीझि डारत तृन-तोर ।

राग—टोड़ी

सुनौं हो स्याम ! इक बात नई ।
आज रास राधा अविलोक्यौ, मेरे मन इहि फूल भई ॥
हँसि-बोलन, डोलन, बन-बिहरन, वे-चितवन न जात चितई ।
कौन कहै बृषभाँनु-नंदनी, प्रगट भई मनौं मदन जई ॥

---

* इस पद में एक तुक (लाइन) कम है ।

तुम सम नैंन, बैंन तुमहीं सम, तुम सम आँनद-केलि-मई।
तिहारो रूप धरि तिहारी ही सौं, तुमहिं परसि भई तुमहीं मई॥
माँथैं मुकुट, पीतपट, मुरली, वनमाला छवि-छाई रई।
रंचक-भेद रह्यौ या वन मैं, औरु सकल-छवि पलट लई॥
तिय-आलिगन, पिय अवलंबन, पिय-कौं हँसि कैं अंक दई।
फिरिचितवनिऔमुरि-मुसिक्यावनि, उघटनिमिस-करि नृत्य-ठई
इहि कौतुक अनूप मन-मौंहन, मनों वोप रस-वेलि छई।
"सूरदास" प्रभु के उर परसत, ललित वलित बलिहारि गई॥

×

रास-मंडल मैं वन-ठन माधौ गति मैं—गति उपजावै हो।
कर-कंकन झनकार मनोहर, प्रमुदित वैंनु-वजावै हो॥
स्याम-सुभग-तन पैं दच्छिन कर, कूजत चरन-सरोजै हो।
अबला-बृंद अवलोकत हरि-मुख, नैंन-विकास मनोजै हो॥
नील-पीत-पट चलत चारु नट, रसमै नूपुर कूजै हो।
कनक-कुंभ-कुच-बीच पसीना, मनुहर मौंतिन पूँजै हो॥
हेम-लता तमाल अवलंबित, सीस मल्लिका फूली हो।
कुंचित-केस, बीच अरुझाने, मनु अलि-माला भूली हो॥
सरद-बिमल निस-चंद विराजत, क्रीड़त जमुना-कूलैं हो।
"परमानंद स्वामी" कौतूहल, देखत सुर-तर भूलैं हो॥

×

बिसद-कदंब सघन-वृन्दावन, रच्यौ रास तरनि-तनया-तट।
सरद-निसा-उड़पति उजियारी, पूर्‌यौ नाद-मुरली नागर-नट॥
स्रवन-सुनति चली ब्रज-सुन्दरि, साजि-सिंगार पैहैर भूषन-पट।
अति-हुलास, कुमुदिनी-प्रफुल्लित, निरखि लाल ठाड़े वंसी-वट॥
मंडल-मधि नाँचति पिय-प्यारी, गावत सुर टोड़ी-तान बिकट।
"दाससखी" देखति नैंननि भरि, वारि-फेरि डारौं कोटि-मदन-भट

राग—बिलावल

चलहु राधिके सुजान ! तेरे हित गुन-निधान;
राास रच्यौ कुँवर-कान्ह, तट कलिन्दी-नंदनी ।
निरतति जुवती-समूह, रास-रंग अति कुतूह;
बाजति रस मुरलिका, अति-अनंदनी ॥
बंसीवट निकट जहाँ, परम-रमन-भूमि तहाँ;
सकल-सुखद बहति मलय-वायु-मंदनी ।
जाती-ईसर-बिकास, कानन अति-सैं सुबास;
राका-निसि-सरद-मास, विमल-चंदनी ॥
"कुंभन दास" प्रभु निहारि, लोचन-भरि घोष-नारि;
नख-सिख सौन्दर्य सीम, दुख-निकंदनी ॥*

×

निरतति राधा-नंद-किसोर ।
ताल, मृदंग सहचरी बजावति, बिच-बिच मुरली को कल-घोर ॥
उरप, तिरप पग धरत धरनि पैं, मंडल फिरत भुजन-भुज-जोर ।
सोभा-अमित विलोकि "गदाधर" रीझि-रीझि डारत तृन-तोर ॥

राग—टोड़ी

सुनौं हो स्याम ! इक बात नई ।
आज रास राधा अविलोक्यौ, मेरे मन इहि फूल भई ॥
हँसि-बोलन, डोलन, बन-बिहरन, वे-चितवन न जात चितई ।
कौन कहै वृषभानु-नंदनी, प्रगट भई मनौं मदन जई ॥

---

* इस पद में एक तुक (लाइन) कम है ।

तुम सम नैंन, वैंन तुमहीं सम, तुम सम आँनद-केलि-मई ।
तिहारौ रूप धरि तिहारी हीं सौं, तुमहिं परसि भई तुमहीं मई ॥
माँथैं मुकुट, पीतपट, मुरली, वनमाला छबि-छाई रई ।
रंचक-भेद रह्यौ या वन मैं, औरु सकल-छवि पलट लई ॥
तिय-आलिंगन, पिय अवलंबन, पिय-कौं हँसि कैं अंक दई ।
फिरिचितवनिऔमुरि-मुसिक्यावनि,उघटनिमिस-करि नृत्य-ठई
इहि कौतुक अनूप मन-मोहन, मनौं बोप रस-वेलि छई ।
"सूरदास" प्रभु के उर परसत, ललित वलित बलिहारि गई ॥

×

रास-मंडल मैं बन-ठन माधौ गति मैं—गति उपजावै हो ।
कर-कंकन झनकार मनोहर, प्रमुदित वैंनु-बजावै हो ॥
स्याम-सुभग-तन पैं दच्छिन कर, कूजत चरन-सरोजै हो ।
अवला-वृंद अवलोकत हरि-मुख,नैंन-विकास मनोजै हो ॥
नील-पीत-पट चलत चारु नट, रसमैं नूपुर कूंजै हो ।
कनक-कुंभ-कुच-बीच पसीना, मनुहर मौंतिन पूँजै हो ॥
हेम-लता तमाल अवलंबित, सीस मल्लिका फूली हो ।
कुंचित-केस, बीच अरुझाने, मनु अलि-माला झूली हो ॥
सरद-विमल निस-चंद विराजत, क्रीड़त जमुना-कूलैं हो ।
"परमानंद स्वामी" कौतूहल, देखत सुर-नर भूलैं हो ॥

×

विसद-कदंब सघन-वृन्दावन, रच्यौ रास तरनि-तनया-तट ।
सरद-निसा-उड़पति उजियारी, पूरचौ नाद-मुरली नागर-नट ॥
स्रवन-सुनति चलीं ब्रज-सुन्दरि, साजि-सिंगार पैहैर भूषन-पट ।
अति-हुलास, कुमुदिनी-प्रफुल्लित, निरखि लाल ठाड़े बंसी-बट ॥
मंडल-मधि नाँचति पिय-प्यारी, गावत सुर टोड़ी-तान बिकट ।
"दाससखी" देखति नैंननि भरि, वारि-फेरि डारौं कोटि-मदन-भट ।

रुचिर रमति रुचि-रासम् ।

कुसुमित कानन नव-बेली, द्रुम, निजकृत उडुप प्रकाशम् ॥
युवती-युगल युगल-प्रति माधो, करत विनोद विलासम् ।
वेणु, मृदंग, मंजीर, किंकिणी, क्वणित मधुर मृदु-हासम् ॥
यमुना-तीर भीर खग, मृग की, मंद-समीर-सुवासम् ।
बरषत कुसुम इन्द्र, सुर धावत, शंकर त्यजि कैलाशम् ॥
निरखि नैंन-छबि मुरझ्यौ मनमथ, लोचन-पद्म-पलाशम् ।
"विष्णुदास" प्रभु गिरिधर क्रीड़ति, कथा कथित शुक, व्यासम् ॥

राग—पट्

आज कमनीय नव-कुंज वृन्दा-विपिन,
मदन-मोहन सुखद रास-मंडल रच्यौ ।
उदित उड़राज-लखि मुदित ब्रजराज-सुत,
प्रान-प्यारी सहित विविध-गति-मति नच्यौ ॥
मुकट की लटक, कुंडल की चटक,
भृकुटीन की मटक, पग-पटक बरनौ न परत ।
हार उर रुरत, कंकन ललित, किंकिनी—
मुखर मंजीर धुनि सुनत जन-मन-हरत ॥
एक तैं एक ब्रज-सुन्दरी अधिक गुन,
रूप रस-मत्त गिरिधरन-संग सुर-भरत ।
सबै जोबन भरी उरप पुनि तिरप—
संगीत-गति अलग मति तत-थेई, थेई करत ॥
चरन नूति सुर-बधू मुरलिका-काकली,
जदपि पिय निकट तोऊ नहिं धीरज धरत ।
रसिक-मनि-मुकुट-नँदलाल की केलि यह—
"गदाधर-मिश्र" नैंकु न मन तैं टरत ॥

रास-बिलास रच्यौ नागर-नट ।
जुरि-मंडल निरतति ब्रज-बाला, नवल-निकुंज सुभग जमुना-तट ॥
उपजत ताँन, बधाँन, सप्त-सुर, बाजत ताल, मृदंग, बीन-रट ।
सनमुख ह्वै नाँचति पिय-प्यारी,लेति सुघंग चाल-गति अट-पट ॥
रसिक-बिहार निरखि ससि हार्यौ,सरद-निसा भूल्यौ अपनी अट।
'कृष्णदास' गिरिधर श्रीराधा राजति मेघ मनौं दामिनि घट ॥

*

खेलत रास रसिक—नँदलाल ।
जमुना-पुलिन सरद-निस-सोभित, रचि मंडल ठाड़ीं ब्रज बाल ॥
तत थेई, तत थेई, थेई, थेई उघटत, बाजत झाँझ, पखावज, ताल ।
जम्यौ सरस अति राग परम्पर, गुँजत कौमल-बैनु रसाल ॥
सनमुख लेति उरप, तिरप दोउ, राधा रसिकनि-मदन-गुपाल ।
मनौं जलद-दामिनि-रस पूरन, कनक-लता जनु स्याम-तमाल ॥
सुर-पुर नारि निहारि परम रस, रति-पति मन मैं भयौ बिहाल ।
थकित चंद,गतिमंद भयौ अति,चूके मुनि ध्यान धरत तिहिं काल ॥
परम बिलास रच्यौ नागर नट, बिलुलित उरसि मनौं अलि माल ।
"कृष्णदास" लाल गिरिधर गति, पावत नाहिं हस्ति, मराल ॥

राग सारंग

बन्यौं रास मंडल अहो ! जुवति जूथ मधि नाइक नाँचे, गावै ।
उघटत सबद थेई, थेई, ता थेई, गति मैं गति उपजावै ॥
बनीं राधावल्लभ जोरी, उपमा दीजै को री !
लटकत है बाँह जोरी, रीझि रिझावै ।
सुर नर, मुनि मोहे, जहाँ तहाँ थकित भए ;
मींठी मींठी तान लालन बैंनु बजावै ॥

अंग-अंग चित्र कीऐं, मोर-चंद माथैं दिऐं ;
काछनी काछैं पीतांबर सोभा पावै ।
"चतुर विहारी" प्यारी प्यारे ऊपर वारि डारी ;
तन, मन धन, यह सुख कहत न आवै ॥

❀

नट-वर गति निरतत हैं, भक्तन-उर परसत हैं;
पुलकित तन हरखत हैं, रास मैं लाल विहारी ।
वाजत ताल, मृदंग, उपंग, वीना, बाँसुरी, सुर तरंग;
थ्र-थ्र-ता, थ्र-थ्र-ता, थंग थंग लेति छंद भारी ॥
कटि काछिनी पीत, सुरंग मोर-मुकट अति सुधंग;
राच्यौ अधर भाल ललित सीस पेच भारी ।
आरति करति ब्रज की वाल, हँसि-हँसि निज कंठ लाइ ।
देखत सुर, नर मुनि औ 'रामदास' बलिहारी ॥

❀

तरनि तनया तीर लाल गिरिधर धरन,
राधिका संग निरतत सुभग रास मैं ।
तत थेई, तत थेई करत गति भेद सौं पिय,
अंग अंग मिलत सुन्दरी ता समैं ॥
नंद नंदन निरखि सुर सहित सुर नारि,
वैंनु कल नाँद सुनि मोहे अकास मैं ।
थक्यौ चंद औरु सब तारका हू थकि रहीं,
तान सुर गान "ब्रज पति" करत जा समैं ॥

राग नट

नागरी ! नट—नागरन गायौ ।
तान, मान, बंधान सन सुर, रागहिं राग मिलायौ ॥

चरन घुँघरू, जंत्र भुजन पैं, नीकौं झमक जमायौ।
तत-थेई, तत-थेई लै गति मैं गति, पति-ब्रजराज रिझायौ॥
सकल-तियन मैं सहज चातुरी, अंग सुधंग दिखायौं।
"व्यास" स्वामिनी धनि-धनि राधा-रास मैं रंग रचायौ॥

*

आज बन नींकौ रास बनायौं।
पुलिन पवित्र, सुभग जमुना-तट, मौंहन बैंनु बजायौ॥
कर कंकन, किंकिनि-धुनि, नूपुर, सुनि खग, मृग सचुपायौ।
जुवती-मंडल-मध्य स्याम घन; नट नाराइन गायौ॥
ताल, मृदंग, उपंग, मुरज, ढफ, मिलि रस-सिन्धु बढ़ायौ।
बिबिध बिसद वृषभाँनु-नंदिनी, अंग सुधंग दिखायौ॥
अभिनै-निपुन लटक लट लोचन, भृकुटि अनंग लजायौ।
तत-थेई, तत-थेई लै नौतन-गति; पति-ब्रजराज रिझायौ॥
परम-उदार रसिक-चूरामनि, सुख-बारिद बरषायौ।
परिरंभन, चुँबन, आलिंगन, उचित जुवति-जन पायौ॥
बरखत कुसुम मुदित नभ-नाइक, इन्द्र निसान बजायौ।
"हित-हरबंस" रसिक राधा-पति, जस-बितान-जग-छायौ॥

राग-पूर्बी

निरतत गुपाल-लाल तरनि तनया-तीरे।
जुबती-जन संग लिऐं, मनमथ-मन करख किऐं,
अंग-अंग सुखद किऐं, राजत बलबीरे॥
लावन्य-निधि, गुन-आगर, कोक-कला गुन-सागर;
त्रिविध-ताप हरति अति सीतल-समीरे।
"आसकरन" प्रभु मौंहन नागर, गुन-निधान संगीत-सागर;
रिझवत-ब्रज-बधू-नागर फरकत पट-पीरे॥

राग-मालव

मदन गुपाल रास-मंडल मैं, मालव-राग रस भर्यौ गावै।
अवघर-तान बँधान सप्त सुर मधुर मधुर मुरलिका बजावै॥
निरतत सुलफ लेति नौतन गति, बहु विधि हस्तक भेद दिखावै।
उघटत सबद तत थेई, तत थेई, जुवति वृन्द मन मोद बढ़ावै॥
थक्यौ चंद, मोहे खग, नग, मृग, प्रति छिन अति जु अनागति लावै।
"चतुरभुज" प्रभु गिरिधर नट नागर, सुर, नर, मुनि गति, मति॥
बिसरावै

❀

कमल नैंन प्यारौ, अवघर तान जानैं।
लाग, अलाग, सुर, राग, रागिनी, बहुत अनागत आनैं।
रसिक राई सिरमौर गुनन मैं, गुन तुम हीं हौ जानैं।
"कुंभन दास" प्रभु गोवरधन-धरि, हरत सबै मन करत गान।

❀

निरतत लाल गुपाल रास मैं, सकल ब्रज बधू संगे।
गिड़ गिड़ तक थंग, तत थेई, तत थेई, भामिनि रति-रस रंगे।
सरद बिमल नभ उड़पति राजत, गावत तान—तरंगे
ताल मृदंग, झांझ औ झालर, बाजत सरस सुधंगे।
सिव बिरंच मोहे सुर, नर, मुनि, रति-पति गति मति भंगे
"गोविंद" प्रभु रस रास रसिक मनि, भामिनि लेति उछंगे

राग-सोरठ

रच्यौ रास मंडल बर तामैं महामुदित मृदुल-राधा प्यारी।
सजनी कहा बानक अंग अंग कौ एक रूप एक बेस,
एक रंग, एक रास ता मैं लेति उपजत गति अति न्यारी
गावत तान तरंग, निरतत उरप, तिरप—
लाग, डाट, उघटत सबद उपज सहारी

जमुना पुलिन सुभग सीतल समीर मंद,
चंद थक्यौ निसि सब दिसि लागति उजियारी ॥
मोर मुकुट माथैं, अंग अंग चित्र काछैं,
ग्रीवा भुज मेलि दोऊ निरतत बिहारी।
"कल्यान" के प्रभु पिय प्रेम मगन ह्वै लहकत फिरत—
करत रास क्रीड़ा ऐसे रीझि बस भए गिरिधारी ॥

राग-श्री

सिरी राग गावति ब्रज भामिनि।
निरतति कोक कला गुन सुन्दरि,
सकल भामिनी मैं वर कामिनि ॥
मिलवित तत थेई अवघर तान —
बधान विमल राका ससि जामिनि।
तरनि तनया तीर विमल सुखद जामिनी,
गान करति तिय अँग अभिरामिनि ॥
सजल स्याम घन नवल नंद सुत,
दिऐं लागि सोहै सौदामिनि।
"कृष्णदास" प्रभु गिरि गोवरधन धरि,
रिझयौ चाँहति संग मिलि स्वामिनि ॥

राग-गौरी

खेलत रास, दुलहिनि दूलहु।
सुनहुँ न सखी! सहित ललितादिक, निरखि निरखि नैंननि किनि फूलहु
अति कल मधुर महा मौहन धुनि, उपजति हंस-सुता के कूलहु।
थेई थेई वचन मिथुन मुख निसरति, सुरमुनि देह दसा किनि भूलहु ॥

मृदु पद न्यास उठत कुँकुम रज, अदभुत बहत समीर दुकूलहु ।
कबहूँ स्याम-स्यामा दोऊ चलि, कच, कुच, हार छुवत भुज-मूलहु ॥
अति-लावन्य रूप अभिनै-गुन, नाहिं न कोटि-काम सम तूलहु ।
भृकुटि-विलास, हासरस बरखत, "हितहरिवंस" प्रेम-रस झूलहु ॥

*

गोप-वधू-मंडल-मथि नाइक गुपाल लाल,
रुचिरानन बिंबाधर-मुरलिका धरे ।
अद्भुत-नटवर विचित्र, भेख, टेक अति-सुदेस,
कनक,कपिस काछि सिखी-सिखंड सिखरे ॥
कुं-कुँ झाँझ झनकत, थौंग-थौंग थगत, किटधि-
किटधि ! तत थेई उघटत रास रस भरे ।
जै जै गिरिराज धरन, कोटि मदन मूरति पै,
"हरजीवन" बलि बलि ब्रज पुरंदरे ॥

*

यह गति नाँच नँचावन नई ।
वृन्दावन रस विलास, सुख बढ़त सई ॥
भाँति भाति राग गाइ अलापत सुर कई ।
उरप, तिरप मान लेति तत-ता-थई ॥
स्याम सुन्दर करत क्रीड़ा, प्रेम घटा छई ।
"कुँभन दास" प्रभु गिरिधर, छिन छिन प्रीति नई ॥

राग –हमीर

रास मैं रस भरी राधिका आवै ।
बाहु-पिय अंस धरि, हंस गति लटकति—
कुच-कनक घट मे रसिक मनहिं भावै ॥
उरप, तिरप, तांडव, लास्य, सुलफनि भेद
निरतनि पिय संग मधुर-स्वर हि गावै ।

लोल कटिदेस रुरति रतन मेखला,
नूपुर क्वनित हस्त-हाव दिखरावै ॥
चपल मोहै नैंन रूप, रुचिर मुसिकावनी,
रूप, गुन रासि प्रान-पतिहिँ रिझावै ।
वृषभाँनु नंदनी, गिरिधरन नंद सुत
चरन-रैंनु नित तहाँ "कृष्णदास" पावै ॥

राग—जै-जैवन्ती

वृन्दाबन बंसी रट, बंसीबट, जमुनातट,
रास मैं रसिक प्यारौ खेल रच्यौ बन मैं ।
राधा-माधौ कर जोरैं, रवि ससि होत भौरैं,
मंडल मैं निरतति दोऊ सरस सघन मैं ॥
मधुर मृदंग बाजै, मुरली की धुनि गाजै,
सुधि न रही कछू री ! सुर, मुनि, जन मैं ।
"नंददास" प्यारौ, रूप उजियारौ कृष्ण,
क्रीड़ा देखि थकित सब जन मन मैं ॥

राग—ईमन

लाल संग, राग रंग, लेति मान रसिक रवन,
थ्र थ्र ता, थ्र थ्र ता, त त थेई गति लींने ।
स. री. ग. म. प. ध. नी. धुनि, व्रजराज कुँवर गावत री !
अति जति संगीत निपुन तननन गति चींने ॥
उदित मुदित सरद चंद टूटे कंचुकी के बंद,
निरखि निरखि बिभव कोटि मदन हींने ।
बिहरत बन रस बिलास, दंपति मन ईषद हास,
"छीत स्वामि" गिरिबरधर रस बस तब कींने ॥

राग–कान्हारा

बन्यौं मोर मुकुट नटवर वपु, स्याम सुन्दर कमल नैंन,
बाँकी भौंह, ललित भाल घुँघरारी अलकैं।
पीत वसन, मोंती माल, हिऐं पदक कंठ लाल,
हँसनि, बोलनि, गावनि गंड स्रवन कुंडल झलकैं॥
कर पद भूपण अनूप, कोटि मदन मोंहन रूप,
अद्भुत बदन-चंद देखि, गोपी भूली पलकैं।
"कहि भगवानहित रामराय" प्रभु ठाड़े रास मंडल में,
राधा सौं बाँह जोरी किऐं, हिऐं प्रेम ललकैं॥

राग–अड़ाना

वंसीवट के निकटहरि रासरच्यो है, मोरमुकुट औओढ़ैं पीतपट।
वृन्दावन कुँज सघन बन, सुभग पुलिन औ जमुना के तट॥
आलस भरे उनींदे दोऊ जन—(श्री) राधा जू औ नागर नट।
"व्यास"रसिक तन, मन, धन. फूले,लेति बलैयाँ कर अँगुरिन चट॥

राग–केदारा

सुनि धुनि मुरली बाजे बन. हरि रास रच्यौ।
कुंज कुंज द्रुम, बेलि प्रफुलित, मंडल कंचन मनिन खच्यौ॥
निरखत जुगल किसोर-किसोरी, मन मिल राग केदारौ मच्यौ।
"श्रीहरिदास"के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी,नीकैं आजु गुपाल नच्यौ।

*

रास रच्यौ बन, कुँवर किसोरी।
मंडल बिमल सुभग बृन्दावन, जमुना पुलिन स्याम-घन गोरी॥
बाजत बीन, रबाब, किन्नरी, कंकन, नूपुर, किंकिनि घोरी।
ततथेई, तत थेई सबद उघटत पिय, भले बिहारि-बिहारिनि जोरी॥

बरहा मुकुट चरन तट आवत, धरें भुजन मैं भामिन कौं री।
अलिंगन, चुँबन, परिरंभन, "परमानँद" डारत तृन तोरी॥

*

आज नँद नंद मुख चंद बन राजै।
जटित मनि मुकुट औ सुभग कुंडल चटक,
बसन पीत पट भ्रू-मटक छाजै॥
रास मैं रसिक वर, ललित संगीत सुर,
मधुर मुरली, मृदंग ताल—बाजै।
"श्री विट्ठल गिरिधरन" क्वनित नूपुर चरन,
सुनति भई घोप तिय थकित आजै॥

*

नाँचति लाडिली रास मैं सुनौं हो सहेली! रंग रह्यौ।
ताही समैं रस रास सहाइक, सुखद मलय सौं पवन बह्यौ॥
उड़पति किरन सुरंजित कानन, नव कुसुमावलि तिमिर दह्यौ।
जुवती मंडल मध्य स्याम घन, राग वारिनिधि वैनु गह्यौ॥
बोलत तोहि सुरत मिलवन कौं, उठि चलि मान मेरौ कह्यौ।
"कृष्णदास" प्रभु गिरिधर नागर, तेरौ बिलंब क्यौं जात सह्यौ॥

*

आजु गुपाल रच्यौ रास, देखति होति जिय हुलास,
नाँचति वृषभाँनु-सुता संग रंग भींने।
गिडि गिडि. तक थंग, थंग, ततत थेई—थेई थेई,
गावत केदारौ राग सरस तान लींने॥
फूले बहु भाँति फूल, सुभग पुलिन जमुना-कूल,
मलय पवन बहत गगन, उड़पति गति छींने।
"गोविन्द" प्रभु करति केलि, भामिनि रस सिन्धु झेलि,
जै जै सुर सबद कहत आँनंद रस कींने॥

राग-कान्हारा

बन्यौं मोर मुकुट नटवर वपु, स्याम सुन्दर कमल
बाँकी भौंह, ललित भाल बँ
पीत बसन, मौंती माल, हिएँ पदक कंठ लाल ,
हँसनि, बोलनि, गावनि गंड स्रवन
कर पद भूषण अनूप, कोटि मदन मौंहन रूप,
अद्भुत बदन-चंद देखि, गोपी
"कहि भगवानहित रामराय" प्रभु ठाड़े रास मंडल
राधा सौं बाँह जोरी किऐं, हिऐं

राग-अड़ाना

बंसीवट के निकटहरि रासरच्यौ है, मोरमुकुट ओ
वृन्दावन कुँज सघन बन, सुभग पुलिन औ जमु
आलस भरे उनींदे दोऊ जन—(श्री) राधा जू औ
'व्यास"रसिक तन, मन, धन, फूले,लेति बलैयाँ कर अ

राग-केदारा

सुनि धुनि मुरली बाजै बन, हरि रास रच्यौ
कंज कुंज द्रुम, बेलि प्रफुलित, मंडल कंचन मनि
निरतति जुगल किसोर-किसोरी, मन मिल राग केदा
"श्रीहरिदास"केस्वामी स्यामाकुँजविहारी,नीकैं आजु

*

रास रच्यौ बन, कुँवर किसोरी।
मंडल विमल सुभग वृन्दावन, जमुना पुलिन स्याम-घ
बाजत बैंन, रबाब, किन्नरी, कंचन, नूपुर, किंकि
ततथेई, तत थेई सबद उघटतपिय, भले बिहारि-बिहा

हाथ न पाउँ[1] न नासिका नैन बैन नहिं कान,
अच्युत जोति प्रकासहीं सकल विस्व को प्रान।
सुनो ब्रजनागरी ॥९॥

जो मुख नाहिन हुतो कहो किन माखन खायो,
पायन बिन गोसंग कहो बन बन को धायो।
आँखिन में अंजन दयो गोवरधन[2] लयो हाथ,
नन्द जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।
सखा सुन स्याम के ॥१०॥

जाहि कहत तुम कान्ह ताहि कोउ पिता न माता,
अखिल अंड ब्रह्मंड विस्व उनहीं में जाता।
लीला गुन अवतार है धरि आये तन स्याम,
जोग जुगुति ही पाइये परब्रह्म पुर धाम[3]।
सुनो ब्रजनागरी ॥११॥

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधौ जेहि भावै।
प्रेम सहित हम पास नंद नंदन गुन गावै।

१—हाथ न पाँय।

२—गोवर्द्धन लयो हाथ।

३—पद्धाम।

विह्वल[१] ह्वै धरनी परीं ब्रजबनिता मुरझाय,
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधौ[२] बैन सुनाय।
सुनो ब्रजनागरी ॥६॥

वै तुमतें नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ,
अखिल बिस्व भरपूरि रूप सब उनहिं बिसेखौ।
लोह दारु पाषान में जल थल महि आकास,
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म परकास।
सुनो ब्रजनागरी ॥७॥

कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासौं कहो ऊधो,
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधौ।
नैन बैन स्रुति नासिका मोहन रूप लखाय,
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगोरी लाय।
सखा सुन स्याम के ॥८॥

यह सब सगुन उपाधि रूप निर्गुन है उनको,
निराकार[३] निर्लेप लगत नहिं तीनों गुन को।

१—विह्वल ह्वै धरनी परीं।

२—ऊधव बैन सुनाय।

३—निरविकार निरलेप लगत नहिं।

हाथ न पाउँ[1] न नासिका नैन बैन नहिं कान,
अच्युत जोति प्रकासहीं सकल विस्व को प्रान।
सुनो व्रजनागरी ॥९॥

जो मुख नाहिन हुतो कहो किन माखन खायो,
पायन बिन गोसंग कहो बन बन को धायो।
आँखिन में अंजन दयो गोवरधन[2] लयो हाथ,
नन्द जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह व्रजनाथ।
सखा सुन स्याम के ॥१०॥

जाहि कहत तुम कान्ह ताहि कोउ पिता न माता,
अखिल अंड ब्रह्मंड विस्व उनहीं में जाता।
लीला गुन अवतार है धरि आये तन स्याम,
जोग जुगुति ही पाइये परब्रह्म पुर धाम[3]।
सुनो व्रजनागरी ॥११॥

ताहि बतावहु जोग जोग ऊधौ जेहि भावै।
प्रेम सहित हम पास नंद नंदन गुन गावै।

१—हाथ न पाँय।

२—गोवर्द्धन लयो हाथ।

३—पद्धाम।

नैन बैन मन ध्यान में मोहन गुन भरपूरि,
प्रेम पियूषहि[1] छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि।
सखा सुन स्याम के ॥१२॥

धूरि बुरी जौ होय ईस क्यों सीस चढ़ावै,
धूरि क्षेत्र में आय कर्म करि हरिपद पावै।
धूरिहि तें यह तन भयो धूरिहि तें ब्रह्मंड,
लोक चतुर्दस धूरि तें सप्तदीप नवखंड।
सुनो ब्रजनागरी ॥१३॥

कर्म धूरि की बात कर्म अधिकारी जानैं,
कर्म धूरि को आनि प्रेम अमृत में सानैं।
तबहीं लौं सब कर्म है जब लौं[2] हरि उर नाहिं,
कर्मबद्ध सब बिस्व के जीव विमुख ह्वै जाहिं।
सखा सुन स्याम के ॥१४॥

तुम कर्महि कस निन्दत जासों सदगति होई,
कर्मरूप तें बली नाहिं त्रिभुवन में कोई।
कर्महि तें उतपत्ति है कर्महि तें है नास,
कर्म किये तें मुक्ति है परब्रह्मपुर बास।
सुनो ब्रजनागरी ॥१५

१—पियूषै छाँड़ि कै।
२—जब लगि हरि उर नाहिं।

कर्म पाप अरु पुन्य लोह सोने की बेरी,
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी।
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है नीच कर्म तें भोग,
प्रेम बिना सब पचि मरै विषय वासना रोग।
सखा सुन स्याम के ॥१६॥

कर्म बुरे जो होंय जोग काहे को[१] धारैं,
पद्मासन सब धारि रोकि इन्द्रिन को मारैं।
ब्रह्म अगिन जरि सुद्ध ह्वै सिद्धि[२] समाधि लगाय,
लीन होय सायुज्य में जोतिहि जोति समाय।
सुनो ब्रजनागरी ॥१७॥

जोगी जोतिहिं भजे भक्त निज रूपहि जानें,
प्रेम पियूषहि[३] प्रगट स्यामसुन्दर उर आनैं।
निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहैं यह नाहिं,
घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं।
सखा सुन स्याम के ॥१८॥

जो उनके[४] गुन होंय वेद क्यों नेति बखानें,
निर्गुन सगुन आतमा रचि ऊपर सुख सानें।

१—कोउ काहे धारें।
२—सुन्य समाधि लगाय।
३—प्रेम पियूषे प्रगट।
४—जो हरि के गुन होंय।

बेद पुराननि खोजि कै पायौ नहिं गुन एक,
गुनहूँ के गुन होहिं जौ कह अकास किहि टेक ।
सुनो ब्रजनागरी ॥१६॥

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तें,
बीज बिना तरु जमै मोहि तुम कहो कहाँ तें ।
वा गुन की परछाँह री माया दर्पन बीच,
गुन तें गुन न्यारे भये अमल बारि मिलि कीच ।
सखा सुन स्याम के ॥२०॥

माया के गुन और और गुन हरि के जानो,
उन गुन को इन माँहि आनि काहे को सानो ।
जाके गुन अरु रूप को जान न पायो भेद,
तातें निर्गुन ब्रह्म कों बदत उपनिषद बेद ।
सुनो ब्रजनागरी ॥२१॥

बेदहु हरि के रूप स्वाँस मुख तें जो निसरै,
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पिछली सुधि बिसरै ।
कर्म मध्य ढूढ़ै सबै किनहु न पायो देख,
कर्म रहित हो पाइये तातें प्रेम बिसेख ।
सखा सुन स्याम के ॥२२॥

प्रेम जो कोऊ बस्तु रूप देखत लौ लागै,
वस्तु दृष्टि बिन कहौ कहा प्रेमी अनुरागै ।

तरनि चन्द्र के रूप कों गुन नहिं पायो जान,
तौ उनको कह जानिये गुनातीत भगवान।
सुनो ब्रजनागरी ॥२३॥

तरनि अकास प्रकास जाहिमें[1] रह्यो दुराई,
दिव्यदृष्टि बिनु कहौ कौन पै देख्यौ जाई।
जिनकी वै आँखैं नहीं देखैं कब वह रूप,
तिन्हैं साँच क्यौं ऊपजै परे कर्म के कूप।
सखा सुन स्याम के ॥२४॥

जब करिये नित कर्म भक्तिहू जामैं आई,
कर्म रूप कातें कहौ कौन पै छूट्यौ जाई।
क्रम क्रम कर्म सबहि किये कर्म नास ह्वै जाय,
तब आतम निहकर्म[2] ह्वै निर्गुन ब्रह्म समाय।
सुनो ब्रजनागरी ॥२५॥

जौ हरि के नहिं कर्म कर्मबंधन क्यौं आवै,
तौ निर्गुन है बस्तु मात्र परमान बतावै।
जौ उनको परमान है तो प्रभुता कछु नाहिं,
निर्गुन भये अतीत के सगुन सकल जग माहिं।
सखा सुन स्याम के ॥२६॥

१—तेजमयं रह्यौ दुराई।

२—निष्कर्म ह्वै।

जो गुन आवै दृष्टि माँझ नहिं ईस्वर सारे,
इन सबहिन तें बासुदेव अच्युत[1] हैं न्यारे।
इन्द्री दृष्टि बिकार तें रहित अधोक्षज जोति,
सुद्ध सरूपी जान जिय तृप्ति जु ताते होति।
सुनो ब्रजनागरी ॥२७॥

नास्तिक जे हैं लोग कहा जानैं हित रूपै,
प्रगट भानु को छाँड़ि गहै परछाहीं धूपै।
हमकों बिन वा रूप के और न कछू सुहाय,
ज्यों करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय।
सखा सुन स्याम के ॥२८॥

ऐसे में नन्दलाल रूप नैनन के आगे,
आय गये छबि छाय बने पियरे उर बागे।
उधौ[2] सों मुख मोरि कै बैठि सकुचि कह बात,
प्रेम अमृत मुख तें स्रवत अंबुज नैन चुवात[3]।
तरक रस रीति की ॥२९

अहो नाथ श्रीनाथ[4] और जदुनाथ गुसाईं,
नन्द नन्दन बिडराति फिरति तुम बिन सब गाईं

---

१ अच्युत हैं न्यारे।
२ ऊधव सो मुख मोरि कै।
३ अम्बुज नैन चुवात।
४ रमानाथ और जदुनाथ गोसाईं।

काहे न फेरि कृपाल ह्वै गो ग्वालन सुधि लेहु,
दुख जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलंबन देहु।
निठुर ह्वै कहँ रहे ॥३०॥

कोउ कहैं अहो दरस देहु पुनि बेनु बजावौ,
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावौ।
हमकों तुम पिय एक हौ तुमकों हमसी कोरि,
बहुत भाँति नीके रहो[1] प्रीति न डारौ तोरि।
एकही बार यौं ॥३१॥

कोऊ कहैं अहो दरस देत पुनि लेत दुराई,
यह छल बिद्या कहो कौन पिय तुम्हैं सिखाई।
हम परबस आधीन हैं तातें बोलत दीन,
जल बिन कहो कैसे जियैं गहिरे जल की मीन।
बिचारहु रावरे ॥३२॥

कोउ कहैं अहो स्याम कहा इतराय गये हौ,
मथुरा को अधिकार पाय महाराज भये हौ।
ऐसी कछु प्रभुता हुती जानत कोऊ नाहिं,
अबला बुद्धि हम डर गईं बली डरैं जग माहिं।
पराक्रम जानि कै ॥३३॥

कोउ कहैं अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे,
गिरि गोबर्धन धारि करी रच्छा तुम कैसे।

---

१ बहुत भाँति के रावरे।

व्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर,
अब बिरहानल दहत हौ हँसि हँसि नन्दकिसोर।
चोरि चित लै गये ॥३४॥

कोउ कहै ये निठुर इन्हैं पातक नहिं व्यापै,
पाप पुन्य के करनहार ये ही हैं आपै।
इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू बिचित्र,
पय पीवत ही पूतना मारी बाल चरित्र।
मित्र ये कौन के ॥३५॥

कोउ कहै री आज नाहिं आगे चलि आई,
रामचंद्र के धर्म रूप में ही निठुराई।
जग्य करावन जात हे विस्वामित्र समीप,
मग में मारी ताड़का रघुवंशी कुलदीप।
बालही रीति यह ॥३६॥

कोउ कहै जे परम धर्म इस्त्रीजित पूरे,
लच्छ लच्छ संधान धरे आयुध के रूरे।
सीता जू के कहे तें सूपनखा१, पै कोपि,
छेदि अंग विरूप कै लोगन लज्जा लोपि।
कहा ताकी कथा ॥३७॥

कोउ कहै री सुनो और इनके गुन आली,
बलि राजा पै गये भूमि माँगन बनमाली।

माँगत बामन रूप धरि नापत करी कुदाँव,
सत्य धर्म सब छाँड़ि कै धर्यौ पीठ पै पाँव।
लोभ की नाव ये ॥३८॥

कोउ कहै री कहा हिरनकश्यप तें बिगर्यौ,
परम ढीठ प्रह्लाद पिता के सनमुख झगर्यौ।
सुत अपने को देत हो सिच्छा खंभ बँधाय,
इन बपु धरि नरसिंह को नखन बिदार्यौ जाय।
बिना अपराध ही ॥३९॥

कोउ कहै इन परसुराम है माता मारी,
परसा काँधे धरी भूमि छत्रिन संघारी।
सोनित कुण्ड भराय के पोषे अपने पित्र,
इनके निर्दय रूप में नाहिन कछू विचित्र।
बिलग कह मानिये ॥४०॥

कोउ कहै री कहा दोष सिसुपाल नरेसै,
ब्याह करन को गयौ नृपति भीषम के देसै।
दलबल जोरि बरात कौं ठाढ़े हैं छबि बाढ़ि,
इन छल करि दुलही हरी छुधित ग्रास मुख काढ़ि।
आपने स्वारथी ॥४१॥

यहि बिधि होइ आवेस परम प्रेमहिं अनुरागी,
और रूप पिय चरित तहाँ ते देखन लागीं।

रोम रोम रहे व्यापि कै जिनके मोहन आय,
तिनके भूत भविष्य कौं जानत कौन दुराय।
रँगीली प्रेम की ॥४२॥

देखत इनको प्रेम नेम उधौ[१] को भाज्यौ,
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने मन लाज्यौ।
मनमें कह रज पाय कै लै माथे निज धारि,
हौं तो कृतकृत ह्वै रह्यौं त्रिभुवन आनँद बारि।
बंदना जोग ये ॥४३॥

कबहुँ कहै गुन गाय स्याम के इनहिं रिझाऊँ,
प्रेम भक्ति तें भले स्यामसुन्दर को पाऊँ।
जिहि बिधि मोपै रीझहीं सो बिधि करौं बनाय,
ताते मो मन सुद्ध ह्वै दुविधा ग्यान मिटाय।
पाय रस प्रेम को ॥४४॥

ताही छिन इक भँवर कहूँ तें उड़ि तहँ आयो,
ब्रज बनितन के पुंज माँहि गुंजत छबि छायो।
बैठ्यौ चाहत पायँ पर अरुन कमल दल जानि,
मनु मधुकर उधौ[२] भयौ प्रथमहि प्रगट्यौ आनि।
मधुप को भेस धरि ॥४५॥

ताहि भँवर सौं कहैं सबै प्रति उत्तर बातैं,
तर्क बितर्कनि जुक्त प्रेमरस रूपी घातैं।

१—ऊधव को भाज्यौ। २—ऊधौ भयो।

जनि परसौ मम पाँव रे तुम मानत हम चोर,
तुमही सो कपटी हुते मोहन नंदकिसोर।
यहाँ तें दूरि हो ॥४६॥

कोउ कहै री बिस्व माँझ जेते हैं कारे,
कपट कुटिल की कोटि परम मानुष मसिहारे।
एक स्याम तन परसि कै जरत आज लौं अंग,
ता पाछे यह मधुपहू लायो जोग भुवंग।
कहाँ इनको दया ॥४७॥

कोउ कहै री मधुप भेस उनहीं को धार्‍यौ,
स्याम पीत गुञ्जार बैन किंकिनि झनकार्‍यौ।
वा पुर गोरस चोरि कै फिरि आयो यहि देस,
इनको जनि मानहु कोऊ कपटी इनको भेस।
चोरि जनि जाय कछु ॥४८॥

कोउ कहै रे मधुप कहैं अनुरागी तुमको,
कौने गुन को जानि यही अचरज है हमको।
कारो तन अति पातकी मुख पियरो जगनिंद,
गुन अवगुन सब आपनो आपुहि जानि अलिंद।
देखि लै आरसी ॥४९॥

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस को जानै,
बहुत कुसुम पै बैठि सबै आपन सम मानै।

आपन सम हमको कियो चाहत है मतिमंद,
द्विविध ग्यान उपजाय कै दुखित प्रेम आनंद।
कपट के छंद सों ॥५०॥

कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै,
हृदय कपट सों परम प्रेम नाहिन छवि पावै।
जानति हौ सब भाँति कै सरबस लयो चुराय,
यह बौरी ब्रजवासिनी को जो तुम्हें पतियाय।
लहे हम जानिकै ॥५१॥

कोउ कहै रे मधुप कौन कह तोहिं मधुकारी,
लिये फिरत मुख जोग गाँठि काटत बेकारी।
रुधिर पान कियो बहुत कै अरुन अधर रँगरात,
अब ब्रज में आये कहा करन कौन को घात।
जात किन पातकी ॥५२॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेम षटपद पसु देख्यो,
अबलौं यहि ब्रजदेस माहिं कोउ नाहिं बिसेख्यो।
द्वै सिंग आनन उपर रे कारो पीरो गात,
खल अमृत सम मानही अमृत देखि डरात।
बादि यह रसिकता ॥५३॥

कोउ कहै रे मधुप ग्यान उलटो लै आयो,
मुक्ति परे जे रसिक तिन्हैं फिरि कर्म बतायो।

वेद उपनिषद सार जो मोहन गुन गहि लेत,
तिनकी आतम सुद्ध करि फिरि फिरि संथा देत।
जोग चटसार में ॥५४॥

कोउ कहै रे मधुप निगुन इन बहुकरि जान्यो,
तर्क वितर्कनि जुक्ति बहुत उनहीं यह आन्यो।
पै इतनो नहिं जानहीं बस्तु बिना गुन नाहिं,
निर्गुन भए अतीत के सगुन सकल जग माहिं।
सखा सुन स्याम के ॥५५॥

कोउ कहै रे मधुप तुम्हैं लज्जा नहिं आवै,
सखा तुम्हारो स्याम कूबरीनाथ[1] कहावै।
यह नीची पदवी हुती गोपीनाथ कहाय,
अब यदुकुल पावन भयो दासी जूठन खाय।
मरत कह बोल को ॥५६॥

कोउ कहै अहो मधुप स्याम जोगी तुम चेला,
कुबजा तीरथ जाय कियो इंद्रिन को मेला।
मधुबन सुधि बिसराय कै आये गोकुल माहिं,
इहाँ सबै प्रेमी बसैं तुमरो गाहक नाहिं।
पधारौ रावरे ॥५७॥

कोउ कहै रे मधुप साधु मधुबन के ऐसे,
और तहाँ के सिद्ध लोग हैं हैं धौं कैसे।

१—कूबरीदास कहावै।

औगुन गुन गहि लेत हैं गुन को डारत मेटि,
मोहन निर्गुन को गहे तुम साधुन को भेंटि ।
गाँठि को खोय कै ॥५८॥

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुम से जो संगी,
क्यों न होंहिं घनस्याम सकल बातन चौरंगी ।
गोकुल में जोरी कोऊ पाई नाहिं मुरारि,
मदन त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारि ।
रूप गुन सील की ॥५९॥

यहि विधि सुमिरि गुविन्द कहत ऊधौ[1] प्रति गोपी,
भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्जा लोपी ।
ता पाछे इकबार ही रोइँ सकल ब्रजनारि,
हा करुनामय नाथ हो केसव कृष्ण मुरारि ।
फाटि हियरो चल्यो ॥६०॥

उमगै जो कोउ सलिल सिन्धु तै तन को धारनि
भीजत अम्बुज नीर कंचुकी भूषन हारनि ।
ताही प्रेम प्रवाह में ऊधौ[2] चले बहाय,
भली ग्यान की मेंड हौं ब्रज में दीन्हीं आय ।
सकल कुल तरि गयो ॥६१॥

प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो भक्ति प्रकासी,
दुविधा ग्यान गिलानि मंदता सिगरी नासी ।

१—गोविंद कहत ऊधव प्रति गोपी । २—ऊधव चले बहाय ।

कहत मोहिं बिस्मय भयो हरि के ये निज पात्र,
हौं तो कृतकृत ह्वै गयो इनके दरसन मात्र।
मेटि मल ग्यान को ॥६२॥

पुनि पुनि कहि हरि कहन बात एकान्त पठायो,
मैं इनको कछु मरम जानि एकौ नहिं पायो।
हौं तौ निज मरजाद सों ग्यान कर्म कह्यो रोपि,
ये सब प्रेमासक्ति ह्वै कुल लज्जा करि लोपि।
धन्य ये गोपिका ॥६३॥

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन कौ ध्यावैं,
काहे न परमानंद प्रेम पद पी कौं पावैं।
ग्यान जोग सब कर्म तें प्रेम परे है साँच,
हौं यहि पटतर देत हौं हीरा आगे काँच।
विषमता बुद्धि की ॥६४॥

धन्य धन्य जे लोग भजत हरि को जो ऐसे,
और जो पारस प्रेम बिना पावत कोउ कैसे।
मेरे या लघु ग्यान कौं उर में मद रह्यो बाध[1],
अब जान्यौं ब्रज प्रेम को लहत न आधौ आध।
वृथा स्त्रम करि मर्यौ ॥६५॥

पुनि कह सब तें साधु संग उत्तम है भाई,
पारस परसे लोह तुरत कंचन ह्वै जाई।

१—उर मद रह्यो उपाय।

गोपी प्रेम प्रसाद कौ हौं अब सीख्यौ आय,
ऊधव तैं मधुकर भये दुविधा ग्यान मिटाय।
पाय रस प्रेम को ॥६६॥

पुनि कहि परसत पाँय प्रथम हौं इनहिं निवारयौ,
भृँग संग्या करि कहत निंद सबहिन तें डारयौ।
अब रहिहौं ब्रजभूमि की है मग मारग धूरि,
बिचरत पद मोपै परै सब सुख जीवन मूरि।
मुनिनहूँ दुर्लभै ॥६७॥

केस होहुँ द्रुम लता बेलि बल्ली बन माहीं,
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं।
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय,
मोहन होहिं प्रसन्न जो यह बर माँगौं जाय।
कृपा करि देहु जू ॥६८॥

ऐसे मग अभिलाष करत मथुरा फिरि आयौ,
गदगद पुलकित रोम अंग आवेस जनायौ।
गोपी गुन गावन लग्यौ मोहन गुन गयौ भूलि,
जीवन कों लै का करौं पायौ जीवन मूलि।
भक्ति कौ सार यह ॥६९॥

ऐसे सोचत जहाँ स्याम तहँ आयो धायो,
परिकरमा दंडौत बहुत आवेस जनायो।

कछु निर्दयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन,
कछु ब्रजबनिता प्रेम की बोलत रस भरि बैन।
सुनो नँदलाड़िले ॥७०॥

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूँठी,
जबहीं लौं नहिं लखौ तबहिं लौं बाँधी मूँठी।
मैं जान्यौं ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप,
जे तुमकों अवलंबहीं तिनकों मेलौ कूप।
कौन यह धर्म है ॥७१॥

पुनि पुनि कहैं अहो स्याम जाय वृंदाबन रहिये,
परम प्रेम को पुंज जहां गोपिन सँग लहिये।
और काम सब छाँड़ि कै उन लोगन सुख देहु,
नातरु टूट्यो जात है अब ही नेह सनेहु।
करौगे तौ कहा ॥७२॥

सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ,
बिबस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ।
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रहि साँवर गात।
कलपतरोरुह साँवरो ब्रजबनिता भईं पात।
उलहि अँग अङ्ग तैं ॥७३॥

ह्वै सचेत कहि भलो सखा पठयो सुधि लयावन,
अवगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे बतावन।

मोसैं उनसैं अन्तरो एकौ छिन भरि नाहिं,
ज्यौं देखौ मो माहिं वै त्यौं मैं उनहीं माहिं।
तरङ्गनि वारि ज्यौं ॥७४॥

गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी,
ऊधौ भ्रमहिं निवारि डारि सुख मोह की जारी।
अपनौ रूप दिखाय कै लीन्हों बहुरि दुराय,
नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय।
प्रेम रस पुंजनी ॥७५॥

टिप्पणी—१

रास-पंचाध्यायी

प्रथम अध्याय

३—नीलोत्पलदल = नीले कमल के पत्ते ।
भ्राजै = शोभित होता है ।
कुटिल-अलक = टेढ़ी जुल्फें घुँघुराले केश ।
अलि-अवलि = भौंरों की पंक्ति

४—निसाकर = चन्द्रमा प्रतिबन्ध = बाधा

५—ऐंन = घर । रतनारे = लाल ।
कृष्णरसासव = कृष्ण के प्रेम का आसव ।

६—स्रवन = कान । गंडमंडल = कपोल-मण्डल

७—अधर-बिम्ब = बिम्बाफल के समान लाल ओंठ ।
मसि भीनीं = रेख आना ।

८—कम्बु-कंठ = शङ्ख के सम न कंठ की छवि ।

१०—हिअ-सरवर = हृदयसरोवर ।

११—त्रिबलो = सुन्दर पेट में तीन बल पड़ जाते हैं उसको त्रिबली कहते हैं ।

१२—सुदेस = सुन्दर । जुव = युवा ।

१३—गूढ़ जानु = रहस्यपूर्ण जंघाएं ।

१४—मकरन्द = पुष्परस ।

१५—मधुकर-निकर = भौंरों का समूह । दुरि = छिपकर ।
दिनमनि = सूर्य । घुमड़ि-घुरि = तेजी से घिर कर ।

१६—लोक ओक = संसार-क्षेत्र, सम्पूर्ण संसार ।
विभाकर = सूर्य

१७—अँधियार-गार = अन्धकार की गुफा

१८—अमित गति = जिसकी गति की सीमा नहीं।

निगम-सार = वेदशास्त्र का सार।

सुकसार = शुकदेव का पूर्ण ज्ञान।

१९—पंचप्राण = प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, ये पांच प्राण हैं।

२२—चिद्घन = चैतन्यस्वरूप।

२३—नग = पहाड़। विरुध = वृक्ष इत्यादि।

२४—अबिरुद्धि = विरोध-रहित होकर। हरि = सिंह।

२५—सन्त = सुन्दर। ओभा = आभा, धूप। आँन = अन्य।

२६—भ्रू-विलसति = भृकुटि-विलास से। विभूति = ऐश्वर्य।

२७—अनन्त = शेषनाग।

सकरसन = बलरामजी।

२९—वर बानक = सुन्दर शोभा।

३२—गन्धलुब्ध = सुगन्ध के लोभी।

३८—मनि-मै सिंह-पीठि = मणिजटित सिंहासन।

३९—कमनीय करनिका = सुन्दर पुष्पाकार छत्री।

पुरन्दर = इन्द्र।

४०—कौस्तुभ मनि = जो हीरा भगवान् विष्णु (कृष्ण) अपने वक्षस्थल पर पहनते हैं। उड़ = नक्षत्र।

४१—अखिल-अंड-व्यापी = ब्रह्माण्ड में व्याप्त होनेवाला।

४३—पौगंड = दस वर्ष से सोलह वर्ष तक की अवस्था।

आक्रान्त = प्रभावित।

४५—करखत = आकर्षित करता है।

४८—सुन्दर जराव = सुन्दर जड़ने की सामग्री, कुन्दन।

५०—अचर = घने, अधिकता से। छपा = रात।

५१—उड़राज = चन्द्रमा। नागर नायक = चतुर नायक।

५३—कुंज-रन्ध्रन = कुंजों के बीच से।

वितन = विस्तृत, बड़ा।
५४—उझकत हैं = प्रेमपूर्वक उचक कर झाँकना।
५७—वामविलोचन = सुन्दर कटाक्षपूर्ण नेत्र।
५८—परस्यो = स्पर्श किया, ग्रहण किया।
५९—तरनि-किरन = सूर्य-किरण। पखान = पाषाण, पत्थर।
सूर्यकान्तमणि = वह मणि जिसमें सूर्यकिरण से अग्नि प्रकट होती है।
६३—गुनमय सरीर-वस = त्रिगुणात्मक माया के वश होकर।
सच्यौ = संचित।
पच्यौ नाहिं रस = ब्रह्मानन्द-रस का प्रभाव नहीं हुआ।
६५—रंचक = थोड़ा सा। परिरंभ = आलिंगन; भेंट।
७०—विलुलित = लटकती हुई।
७३—राका-मयंक = पूर्णिमा का चन्द्र।
८०—सुरलभ = देवताओं को प्राप्त होने वाली।
८१—ओपी = सनी हुई।
८४—अरबरैं = टकटकी लगाये हुए, इकटक।
८५—बंक चहनि = बाँकपन की रुचि।
९४—अलक-अलिन के भार = अलकों के भौंरों के भार से।
११४—गौंहन = फाँसने वाला। ११५—चौंप = उत्सुकता।
११७—धूँधरी = धुँधली। ११८—पूटैं = लहरैं।
१२२—पुलिन = किनारे। १३१—छिलछिल = छिछला, उथला
१३२—बरधन = बढ़ाना।

द्वितीय अध्याय

२—पुट = हलका रँग। ७—मनमूँसे = मन को चुराये।
९—करबीर = करौंदा १०—दुख-दन्दन = दुख नष्ट करनेवाले।
१२—डहडहे = आँसू भरे हुए। १५—उतंग = ऊँचा।
१६—सुख-सनस = सुख में सने हुए। २०—गहवर = घनी।
२२—तनमैं = तन्मय, तल्लीन।

२४-बनि आवनि=रूप धरना, मोहकता। २९-अरिदर=गद्दा।

३०--जोजत=ध्यान करते हैं।

३२-परम कांत=प्रियतम, परम सुन्दर।

३४--बिलोलै=बिल्लौरी शीशा।

३५—तरक करैं=सोच-विचार कर पूँछती-बताती हैं।

४२—धर=धरा पर, पृथ्वी पर।

४३--मानिनि-तनु काछैं=राधा का स्वरूप धर लिया।

४४--कासि कासि=कहाँ हो, कहाँ हो। वदति=कहती है।

४८--स्रम कन=पसीने की बूँदें।

४९—लोल रद-छद=सुन्दर दाँतों के चिन्ह, जो चुम्बन के समय कपोलों पर हुए हैं।

५०—बहुरि-बहुरि=लौटकर। लाड़ लड़ाई=प्यार किया था।

तीसरा अध्याय

१—अवधि-भून-इन्दिरा-अलकृत=लक्ष्मी जो चंचला आती जाती रहती है, वह भी सदैव के लिए यहाँ बस रही है।

२—नैन-मूँदिबौं=आँख मिचौनी।

हाँसी-फाँसी=मुसकान की फाँसी।

७—सिल=कंकड़-पत्थर।

८—प्रनत-मनोरथ=दीन दुःखियों के मनोरथ।

१७—फनी-फनन पर=कालानाग के फनों पर।

१९—सनैं मनैं=धीरे धीरे। अटवी=झाड़ झंखड़।

तृण-कूप=तिनकों की नोंकें।

२१—वितरहीं=प्रदान करता है।

चौथा अध्याय

१—प्रेमसुधानिधि=प्रेमसुधा का समुद्र।

अलबल बोलैं=प्रेमपूर्वक ढिठाई से बोलना।

२—दृष्टि-बन्द=नजरबन्दी। नटवर=ऐन्द्रजालिक, मदारी।

३—मनमथ के मन-मथ=कामदेव का भी मन मथन करनेवाले।
४—घट=शरीर।
८—पटकी=दुपट्टी, उत्तरीय वस्त्र। दाँमन=शरीर में।
१२—दसनन=दांतो में। ताड़ति=प्रेम से सताती है।
१४—छादन=ओढ़नी, चीर। छाइ दयो है=विछा दिया है।
१८—अम्वर=वस्त्र। १९—ठकुराई=स्वामित्व, शासन।
२०—कमल करनिका=कमल के अन्दर का कर्णफूल।
२२—भजते कौं भजैं=भागते हुए का भजन करते है, नश्वर संसार में लिप्त हैं।
बिनु भजते भजहीं=शाश्वत परब्रह्म का ध्यान करते हैं। ज्ञानी।
दोउन तजहीं=दोनों को तजते हैं, भक्त लोग, सगुण उपासक
२५—उरनि=उऋण, उद्धार।

पंचम अध्याय

३—तूल=झगड़ा झंझट।
४—कमल-चक्र पर=कमलाकार चबूतरे पर।
५—एक काल=एक साथ।
६—रवनि=रमणी, थिरक थिरक कर नाचना।
झांई लैईं=प्रतिविम्ब पड़ते हैं।
७—स्यामा-स्याम=राधाकृष्ण।
११—जुरली=सम्मिलित।
१२—मुरज=मृदंग। रली=मिल रही है।
१३—चटकनि तारनि की=नाचते समय जो सितारे टूट टूट कर गिरते हैं। १६—मलकन=बाँकी अदा से नाचना।
१७—ढलकनि=हिलना-डुलना।
१८—करतल फिरति=नटों का एक कौतुक-विशेष।
लट्टू होत जिय=मन लट्टू होता है।

५०—चाँहि कैं=कौतुक-पूर्वक।
२२—मुरली-सुर-जुरली=बंशी से अपना सुर मिलाकर।
मुरली कौं छेकि=मुरली के स्वर से भिन्न स्वर करके।
२३—दै तँबोल ढरि=कपोल चुम्बन करते समय कौतुक-वश पान की पीक लगा कर।
२७—मुरि=लचक कर।
२८—मंडल डोलनि=मंडलाकार नाचना।
"ता-थेई" बोलनि=रासक्रीड़ा में गान का एक सुन्दर शब्द विशेष।
२९—छेकि= सब से ऊपर, सब से भिन्न सुन्दर।
३१—मुरझे=फीके पड़ गए। ३७—धूँधरि=धुंआधार।
३८—लटकि=उत्साह पूर्वक।
४०—रति अविरुद्ध जुद्ध=अनुकूल सुरति संग्राम।
४३—धारि धर=पृथ्वी पर। ४५—डगरौ=मार्ग की ओर।
४७—व्रीडन=लजानेवाले।
४८—मरगजी माल=कुँम्हलाया हार।
मलकंति=गम्भीर और धीमी सी सुन्दर गति।
४९—करनी=हथिनी।
५५—दुरि मुरि=अदा के साथ लुक छिपकर।
५९—तन असन=शरीर में लिपट कर।
६१—प्रकृति बाम=प्रकृतिरूपी रमणी, माया।
धरि धरि=धड़ धड़। ६५—ब्रह्म मुहूरत=उषाकाल।
७२—विषै विदूषित=विषय विकार से दूषित।
७५—हीनसद्ध=जिनमें श्रद्धा नहीं।
धरम-बहिर मुख=धर्म की ओर जिनकी रुचि नहीं।
७८—सप्तनिधि भेदिनि=सातों समुद्रों को भेदने वाला।
धारहि धार रमत=सहज में पार हो जाते हैं।

टिप्पणी—२

भँवरगीत

१—प्रेम धुजा=प्रेम ध्वजा; प्रेम को ऊंचा उठानेवाली।
स्याम विलासिनी=कृष्ण में ही सुख मानने वाली।

२—संकेत=एकान्त स्थान।
मधुपुरी=मथुरा जी का प्राचीन नाम।

३—कंठ घुटे=गला भर आया। व्यवस्था=नियम, विधान।

४—अर्घासन=अर्घ देकर आसन देना।
वलवीर=वलदाऊ जी।

५—राम=वलराम जी।

६—अंग आवेस=रोमाञ्च, प्रेमाकुलता।
प्रवोधहीं=होश में लाते हैं।

७—अखिल बिस्व भरपूरि="सर्वं खल्विदं ब्रह्म"। सम्पूर्ण संसार ब्रह्ममय है।

८—ठगोरी=मोहित करने वाली शक्ति, जादू।

९—सगुन=सत्व, रज और तम, इन तीनो गुणों से युक्त साकार-स्वरूप। उपाधि=विकारयुक्त।
निर्गुन=सत्व, रज और तम इन तीनो गुणों से परे।
निर्लेप=जो किसी से लिप्त नहीं।
अच्युत=जो कभी च्युत न हो, अर्थात् अविनाशी।

१०—हुतो=था।

११—अंड=पृथ्वीमंडल।
ब्रह्मंड=सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर सभी लोक हैं।
जाता=उत्पन्न हुआ है, विनाश होता है।
लीला-गुन=लीला करने के लिए।
जोग-जुगुति=योग-साधन से।

परब्रह्म पुर धाम = ब्रह्मपद, परम धाम।

१३—ईस = शंकर। धूरि-क्षेत्र = पृथ्वी, संसार।

लोक चतुर्दस = चौदह लोक; भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल।

सप्तदीप = सप्तद्वीप; जंबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर।

नवखंड = भरत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश।

१४—कर्म-अधिकारी = कर्म फिलासफी के ज्ञाता, व्यंग्य से सकाम भक्त।

कर्मबद्ध × × जीव विमुख = सम्पूर्ण जीव कर्म में फँसकर ही भगवान् से विमुख होते हैं।

१६—कर्म के साथ ही पाप पुण्य आ जाता है और पाप पुण्य दोनों ही लोहे और सोने की वेड़ी हैं—वेड़ी चाहे सोने ही की हो, आखिर पैरों के लिए वन्धन तो वह भी है। हाँ इतना है कि उच्च कर्म से स्वर्ग मिलता है और नीच कर्म से भोग। पर वास्तव में 'प्रेम' (निष्काम भक्ति) के विना तो इस विषयवासना-रोग में पच पच कर मरना ही है।

१७—सायुज्य = भगवान् में लीन होना।

१८—योगी ज्योति का ध्यान करते हैं; पर भक्त निज स्वरूप को जानता है— वह अपने अन्दर ही प्रेमपीयूष को प्रकट करके श्यामली सलोनी मूर्ति को हृदय में धारण करता है। निर्गुण में तो बड़ा बखेड़ा है—उसका कोई भी लक्षण यदि हम आगे धरें, तो लोगों को सन्तोष नहीं होता। अरे घर में आया हुआ (हमारा श्याम-सुन्दर स्वरूप)—इसकी पूजा न करें—घर में आया हुआ नाग हम न पूजें और

बांबी (निर्गुण) को पूजने जावें ! ऐसी मूर्खता क
करेगा ?-

१९—नेति = वेदों में 'नेति' 'नेति' कह कर परब्रह्म का परि
दिया गया है—अर्थात् 'यह नहीं है', 'यह नहीं'—अर्थ
जितना कुछ नाम, रूप और गुण है , उससे वह परे है

२८—हित रूपे—सगुण का महत्व ।

करतल आमलक = हथेली पर रखे हुए आंवले के समा

२९—बागे = वस्त्र ।

३०—बिहराति फिरति = व्याकुल घूमती हैं ।

४०—व्याल अनल विष ज्वाल तें राखि लये सब ठौर—का
नाग के विष तथा दावानल इत्यादि सब से रक्षा की थ

कालीनाग की कथा—यमुना में एक कुण्ड था जिसमें का
नाग रहता था । उसके विष की अग्नि से कुण्ड का जल स
तप्त विषयुक्त रहता था । जो जीव भूले-भटके भी उस कुण्ड
निकट चले जाते थे, कुण्ड के जल की विषैली भाफ
मर जाते थे । श्रीकृष्णचन्द्र जी अपने ग्वालबालों के स
एक दिन यमुना के तट पर जाकर गेंद खेलने ल
उन्होंने खेल में ही अपने मित्र श्रीदामा की गेंद कालीदह
फेंक दी । जब श्रीदामा गेंद के लिए कृष्णजी से झग
लगे, तब वे कालिया-कुण्ड में कूद पड़े । वहाँ पर भगव
कृष्णचन्द्र जी तथा कालीनाग में युद्ध हुआ । भगवान् उछल
उस महा विषधर नाग के फन पर चढ़ गए । उनके बोझ से उ
का अंग-प्रत्यङ्ग ढीला हो गया और अंत में वह पराजित
गया । कालीनाग की यह कथा श्रीमद्भागवत पुराण में श्री शु
व जी ने राजा परीक्षित के पूछने पर कही है ।

दावानल की कथा—एक बार श्रीकृष्णचन्द्र जी बलराम
अन्य ग्वालबालों सहित गायों को चराते हुए मुँज बन में जा प
वहाँ । वन में दावाग्नि लग जाने के कारण सब लोग व्याकुल

वहाँ से चल दिए। जब शिशुपाल आदि राजाओं को यह समाचार मालूम हुआ तो वे युद्ध करने के लिए आ पहुँचे। श्रीकृष्ण ने उन सब को पराजित किया और रुक्मिणी को अपने महलों में लाकर विधि-पूर्वक उसके साथ विवाह किया। इस पर शिशुपाल कृष्ण से द्वेष करने लगा। परन्तु कृष्ण जी की बुआ का यह लड़का था। अतएव वे बराबर क्षमा करते गये। अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर के राज सूय यज्ञ में जब शिशुपाल का द्वेष चरम सीमा पर पहुँच गया, तब भगवान् कृष्ण ने सुदर्शनचक्र से उसका सिर उड़ा दिया।

४३—तिमिर भाव आवेस=अपनी अज्ञानता पर।

४७—मसिहारे=काले।

लायो जोग भुवंग=योग का सांप ले आया। इस पद्य से गोपिकाओं ने भँवर को सम्बोधन करके श्रीकृष्ण और उद्धव दोनों पर छींटा कसने शुरू किये हैं। भँवर, उद्धव और श्रीकृष्ण—तीनों को एक माना है।

५०—द्विविध ज्ञान=निर्गुण सगुण का भेद; क्योंकि गोपिकाएँ अभेद भक्ति जानती हैं।

५४—संथा=पाठ।

जोग चटसार=योग की पाठशाला।

५५—वस्तु विना गुन नाहिं=अर्थात् जिसका कुछ अस्तित्व है, उसमें गुन अवश्य है। कोई भी वस्तु निर्गुन नहीं कही जा सकती; और यदि निर्गुन मान भी लिया जाय, तो वह निराकार होने से सिर्फ अतीत की ही वस्तु हो सकती है; परन्तु सगुण तो सम्पूर्ण विश्व में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।

५६—हुती=थी।

५७—कुबजा तीरथ=गोपियाँ कुबजा दासीको व्यंग्य से श्रीकृष्ण और उद्धव (गुरु-चेले) का तीर्थ—यानी "तारनेवाला" बतलाती हैं और कहती हैं कि वहाँ जाकर तुम लोगों ने इन्द्रियों का मेला लगाया है-जैसे योगी लोग अपने इष्ट के लिए सम्पूर्ण इन्द्रियों को एक ही जगह तल्लीन करते हैं।

५८—औगुन गुन गहि लेत है=अवगुण को गुण की तरह ग्रहण करते हैं।

५९—चौरंगी=चालाक, "मदन त्रिभंगी आपु हैं, करी त्रिभंगी नारि"—आप स्वयं तो कामदेव की तरह सुन्दर त्रिभंगी छवि रखते हैं; परन्तु स्त्री भी क्या ही खूबसूरत त्रिभंगी कुब्जा कूबड़ी दासी प्राप्त की है! वाह! खूब ही जोड़ी अब वहाँ मधुवन में जाकर मिली है! गोकुल में तो कोई ऐसी "रूप, गुन, सील" वाली मिली नहीं!

६०—गोपियों के सामने भौंरा तो एक निमित्तमात्र सम्बोधन के लिए रहा; परन्तु जो कुछ उन्होंने उलहना दिया, वह कृष्ण को स्मरण करके कहा; और उद्धव पर भी व्यंग्य तथा हास्य के रूप में बहुत कुछ ढालती गईं। कई जगह तो उद्धव को भी साक्षात् भ्रमर के रूप में ही सम्बोधित किया है। और उद्धव आये भी थे श्रीकृष्ण की ही पोशाक करके, ऐसा श्रीमद्भागवत से प्रकट होता है। उद्धव बड़े सरस रसग्राही कृष्णभक्त थे। इसीसे उनका एक नाम "मधुकर" भी है।

६६—उद्धव स्वयं अपने आप कहते हैं कि प्रेम में किस प्रकार पागलहोना चाहिये—यह शिक्षा आज मैंने यहाँ गोपियों से आकर प्राप्त की; और मेरा जो सगुण निर्गुण करके द्विविध ज्ञान था, वह आज यहाँ आकर मिट गया; और आज से प्रेमरस का पान करके मैं सच्चा "मधुकर" बना।

७१--आँधी मूँठी=बच्चे मुट्ठी बाँध कर खिलवाड़ में परस्पर पूँछते हैं, "बतलाओ हमारी मुट्ठी में क्या है?" दूसरा बच्चा किसी वस्तु को समझ कर कहता है कि यह है--इतने में मुट्ठी जतलाने वाला लड़का चट से अपनी मुट्ठी खोल देता है, तो वास्तव में उसमें कुछ नहीं निकलता! इस पर सब लड़के हँसते हैं। वही उद्धव श्रीकृष्ण से यहाँ पर कहते हैं कि--तुम बड़े करुणामय बनते हो, बड़े रसिक बनते हो; पर यह सब तुम्हारा मिथ्या आडम्बर मात्र है। तुम बंधी हुई मुट्ठी की तरह बिलकुल बने हुए-- छूँछे हो--जब तक तुमको भीतर से न देखा जाय, तभी तक तुम्हारा यह झूठा आडम्बर है। भेद खुल जाने पर तुम में कुछ भी नहीं हैं।

७२--उद्धव की बातें सुनकर भगवान् कृष्ण की दोनों आँखें भर आईं। गोपियों के प्रेम में वे इतने मग्न हो गये कि उन्हें कुछ भी सुधबुध नहीं रह गई। उनके श्यामले शरीर में रोमाञ्च हो आया, तो उनका एक-एक रोम गोपिका बन गया! उनका साँवला शरीर तो मानो कल्पवृक्ष हुआ; और उनके अंग अंग से व्रज-वनिताएँ मानों पत्तों की तरह फूट पड़ीं!

७५--"डारि मुख मोह की जारी"--संमोहन-विद्या में मुख के ऊपर ही जादू डाली जाती है, जिसका सर्वाङ्ग पर असर होता है। "जारी" से अभिप्राय यहाँ "जाल" या जादू से है।